

सिरपुर

महेशचन्द्र श्रीवास्तव



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

सिरपुर

महेशचन्द्र श्रीवास्तव



मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

SIRPUR by Mahesh Chandra Shrivastava

सिरपुर : महेश चन्द्र श्रीवास्तव

प्रादेशिक भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थों और साहित्य के निर्माण के लिए भारत सरकार के शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय (संस्कृति विभाग) की केन्द्र प्रवर्तित योजना के अन्तर्गत मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल द्वारा प्रकाशित एवं भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध कराये गये कागज पर मुद्रित ।

- प्रकाशक - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
- © - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
- प्रथम संस्करण - 1984
- मूल्य - ~~₹ 25.00~~
- आवरण - कार्यालयीन कलाकार द्वारा
- मुद्रक - एम. एम. प्रिंटर्स, सदर मंजिल, भोपाल

प्राक्कथन

अनुभव और अभिव्यक्ति की परम्परा मनुष्य जाति के विकास का आधार है और यह परम्परा भाषा में प्राप्त होती है। इसीलिए विभिन्न भाषा-भाषी समाजों का आध्यात्मिक और भौतिक दोनों तरह का उत्कर्ष भाषा की समृद्धि के अनुपात में रहा करता है। मनुष्य जाति ने अनुभव और ज्ञान के क्षेत्र में जो कुछ भी अर्जित किया है वह सब, जिस भाषा में नहीं होगा उस भाषा का समाज पिछड़ जायेगा। हमारा देश इसका मार्मिक उदाहरण है। लम्बी पराधीनता के दौर में एक विदेशी भाषा ने शिक्षा, व्यवस्था और प्रशासन में देशी भाषाओं को निर्मूल कर दिया, इसका असर देश की संस्कृति पर तो पड़ा ही, समाज में आर्थिक विषमता बढ़ी। एक विशिष्ट वर्ग पनपा और पद, पैसा और सामाजिक प्रतिष्ठा का केन्द्रीकरण हुआ। ज्ञान-विज्ञान के उच्च स्तरों पर देशी भाषाओं का प्रयोग नहीं हुआ इसलिए वे पिछड़ीं। सभी शिक्षा केन्द्रों, समाज की सभी विभिन्न संस्थाओं और प्रशासन के सभी स्तरों पर अंग्रेजी ने जड़ें जमा लीं। इसीलिए जब स्वाधीनता के बाद आन्दोलन की प्रतिज्ञा के अनुसार देशी भाषाओं की पुनर्प्रतिष्ठा के प्रयत्न हुए तो पाया गया कि भाषा के साम्राज्य को एक झटके में नहीं, धीरे-धीरे ही समाप्त किया जा सकता है।

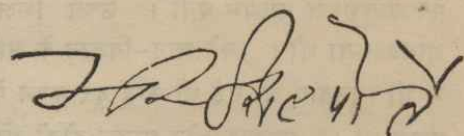
सबसे पहले शिक्षा का माध्यम बदला गया और प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर मातृभाषा माध्यम बनी। उच्च शिक्षा में माध्यम परिवर्तन के लिए तैयारी की आवश्यकता थी। नये ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ न चल पाने के कारण देशी भाषाओं में भी न्यूनताएँ आ गई थीं उन्हें दूर करने के बाद ही उच्च शिक्षा में माध्यम बदलना संभव था। सरकार और समाज दोनों ओर इस तैयारी का काम काफी पहले शुरू हो चुका था जो सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में संगठित रूप में उभर कर सामने आया।

केन्द्र सरकार ने 1969 में पाँच हिन्दी प्रान्तों सहित विभिन्न भाषा-भाषी राज्यों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की और उन्हें यह दायित्व सौंपा कि उच्च शिक्षा के हर स्तर पर मातृभाषा की पाठ्य पुस्तकें सुलभ रहें, मातृभाषा में नये ज्ञान-विज्ञान के लेखन की परम्परा का निर्माण हो तथा शिक्षा केन्द्रों में माध्यम परिवर्तन के अनुकूल वातावरण बने। अपने इन दायित्वों के प्रति चेतन रहकर अकादमियों ने पिछले पंद्रह वर्षों में जो काम किया है उसका शिक्षा केन्द्रों पर गहरा असर पड़ा है। मातृभाषा पर निर्भर विद्या-थियों की कठिनाइयाँ कम हुई हैं। विद्वान प्राध्यापकों में से अनेक ऐसे लेखक उभरे हैं जिन्होंने काफी हद तक अनुवाद से छुटकारा दिलवाया है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली

आयोग ने नये ज्ञान-विज्ञान की अवधारणाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों की पहचान और आवश्यक होने पर उनका निर्माण करके लेखकों का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस दौरान मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ने विज्ञान और मानविकी के 25 विषयों की 375 पुस्तकें प्रकाशित की हैं। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के विद्वान प्राध्यापकों ने पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पुस्तकों का निर्माण किया है। इन पुस्तकों का प्रचलन में होना इस बात का प्रमाण है कि एक अभाव था जिसकी पूर्ति की गई और इस बात का प्रमाण भी, कि शिक्षा में मातृभाषा माध्यम के रूप में अपनी जगह बना रही है। इसलिए अकादमी का दायित्व अब और भी बड़ा हो गया है। हिन्दी माध्यम पर विद्यार्थियों की निर्भरता बढ़ रही है। प्रसन्नता की बात है कि अकादमी का लेखन और प्रकाशन कार्यक्रम उनकी आवश्यकताओं के अनुपात में है। पुस्तकों में भाषा की सहजता-सरलता के प्रति भी अकादमी सचेत है। पुस्तकों के मूल्य तो इतने कम रखे गये हैं कि गरीब से गरीब विद्यार्थी की क्रय शक्ति के भीतर रहें।

इन पुस्तकों का प्रचलन बढ़ाना अकादमी के प्रयत्नों के साथ-साथ शिक्षा केन्द्रों के सहयोग पर भी निर्भर करता है। अतः आपसे अनुरोध है कि आप अपने महा-विद्यालय, विश्वविद्यालय में इन पुस्तकों को समुचित प्रश्रय दें और समय-समय पर इनके गुण-दोषों से अकादमी को अवगत भी कराएँ। माध्यम परिवर्तन वस्तुतः एक आन्दोलन है जिसमें आपके सक्रिय सहयोग से ही अकादमी के प्रयत्न सार्थक होंगे। यह पुस्तक आपको सौंपते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है कि अकादमी ने अपने लक्ष्य की दिशा में एक कदम और बढ़ाया। आशा है विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।



भंवरसिंह पोते

मंत्री उच्च शिक्षा, म. प्र.

एवं अध्यक्ष

म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

प्रस्तावना

मध्यप्रदेश के पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक महत्व के स्थलों का समग्र परिचय देने वाली पुस्तकों के क्रम में 'सिरपुर' प्रस्तुत है। इसके पूर्व अकादमी ने त्रिपुरी, भरहुत, राजिम, पद्मावती, बाघ की गुफाएँ तथा साँची का प्रकाशन किया है।

अनुश्रुतियों एवं पार्श्व उल्लेखों के आधार पर सिरपुर महाभारत काल में भी विद्यमान था किन्तु इसके ऐतिहासिक तथ्य 5 वीं शताब्दी से पहले के नहीं मिलते। छठीं शताब्दी में दक्षिण कोशल पर जब पाण्डुवंशियों का आधिपत्य था तो (श्रीपुर) सिरपुर राज्य की राजधानी था। उस काल में सिरपुर राजनीति के साथ-साथ कला और साहित्य के क्षेत्र में भी समस्त दक्षिण कोशल का प्रेरणा स्रोत रहा। स्थापत्य कला मूर्तिकला, साहित्य तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सिरपुर की प्रगति की ख्याति से आकर्षित होकर चीनी यात्री ह्वेनसांग भी सिरपुर पहुँचा था। सिरपुर उन दिनों धार्मिक सहिष्णुता का बहुत बड़ा केन्द्र था जहाँ शैव, वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्मों के सैकड़ों उपासनागृह थे। सिरपुर में प्राप्त भग्नावशेष दक्षिण कोशल (रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर और रायगढ़ जिले) की संस्कृति की पूरी डेढ़ हजार वर्ष लम्बी कथा कहते हैं।

सिरपुर शुरु से ही पुरातात्विकों तथा इतिहासज्ञों की रुचि का विषय रहा है। पुस्तक के विद्वान लेखक श्री महेशचन्द्र श्रीवास्तव ने सिरपुर में काम करते हुए जहाँ एक ओर उपलब्ध प्रकाशित-अप्रकाशित सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग किया है वहीं अपने स्थल-अध्ययन की उपलब्धियों से उसे समृद्ध भी किया है। सिरपुर की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ तत्कालीन समाज, धर्म, राजनीति, साहित्य, कला और जनजीवन का समग्र रूप उभारने में लेखक को सफलता मिली है। पुस्तक में तेरह चित्र और सात मानचित्र हैं।

आशा है, पुरातत्व एवं इतिहास के विद्वान इस पुस्तक को सिरपुर-विषयक साहित्य में एक उल्लेखनीय वृद्धि के रूप में मान्यता देंगे।

सुरेन्द्रदेव मिश्र
संचालक

विषय - सूची

	पृष्ठ
संक्षेप	
अध्याय 1- परिचय	1
अध्याय 2- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि चौथी शताब्दी से पूर्व	4
अध्याय 3- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि चौथी शताब्दी के पश्चात्	11
अध्याय 4- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	29
अध्याय 5- धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति	63
अध्याय 6- ह्वेनसांग और नागार्जुन	70
अध्याय 7- सिरपुर के समकालीन सांस्कृतिक स्थल	73
परिशिष्ट	77
1- चित्र फलक	79
2- मानचित्र	89
3- सहायक ग्रन्थ सूची	97

संक्षेप

- | | |
|----------------------|---|
| 1- आ० स० रि० कनि० | आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट-कनिघम |
| 2- ए० पी० इ० | एपीग्रेफिया इण्डिका |
| 3- इ० आ० रि० | इण्डियन आर्कियालॉजी-ए रिब्यू |
| 4- का० इ० इ० | कार्पस इन्सक्रिप्शनम इण्डिकेरम |
| 5- इ० हि० क्वा० | इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली |
| 6- ज० आ० हि० रि० सो० | जरनल आफ आन्ध्र हिस्टारिकल
रिसर्च सोसाइटी |
| 7- ज० इ० हि० | जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री |
| 8- ज० म० प्र० इ० प० | जरनल आफ मध्यप्रदेश इतिहास परिषद |
| 9- इ० ए० | इण्डियन एण्टीक्वेरी |
| 10- आ० स० रि० वे० स० | आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट-वेस्टर्न सर्किल |

अध्याय I

परिचय

मध्यप्रदेश का दक्षिण पूर्वी अंचल, जिसमें रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर और रायगढ़ के जिले सम्मिलित हैं, छत्तीसगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में इसे कोशल अथवा दक्षिण कोशल कहा जाता था। परन्तु इस प्रदेश की सीमाओं में परिवर्तन भी होता रहा है। प्राचीन काल में उड़ीसा का पश्चिमी भाग (सम्बलपुर जिला) भी इसमें सम्मिलित था और कदाचित् इसकी पश्चिमी सीमा महाराष्ट्र में बहने वाली वर्पा नदी तक विस्तृत थी। उक्त सीमाओं में परिवर्द्ध एवं मुख्यतया महानदी एवं उसकी सहायक नदियों से सिंचित इस प्रदेश की प्राचीन राजधानी रायपुर जिले में महानदी के पूर्वी तट पर स्थित 'सिरपुर' में थी।

इस प्रदेश का छत्तीसगढ़ नाम क्यों पड़ा? इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। छत्तीसगढ़ शब्द न तो किसी अभिलेख में प्राप्त होता है और न किसी प्राचीन ग्रन्थ में। ग्रन्थों एवं अभिलेखों में इसका नाम केवल 'कोशल' अथवा 'दक्षिण कोशल' मिलता है। स्वर्गीय डा. हीरालाल ने इस प्रदेश को 'महाकोशल' नाम से अभिहित किया है।¹ परन्तु इस शब्द का भी कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इस प्रदेश के महत्वपूर्ण स्थलों, राजाओं, नदियों एवं पर्वतों के नामों के साथ अधिकतर महा शब्द संयुक्त मिलता है, कदाचित् इसीलिये इसे महाकोशल की संज्ञा दे दी गई है। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ शब्द के सम्बन्ध में भी भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की कनिष्म द्वारा संपादित रिपोर्ट में ऐसा उल्लेख है कि बिहार में ऐसी अनुश्रुति प्रचलित है कि वहाँ के चमारों के छत्तीस परिवार मूलस्थान से निकाल दिये जाने पर किसी दक्षिणी प्रदेश में जाकर बस गये। इस अनुश्रुति के आधार पर कनिष्म² ने यह निष्कर्ष निकाला कि चूँकि आधुनिक छत्तीसगढ़ प्रदेश बिहार के दक्षिण में है और यहाँ के निवासियों की बोली एवं उनका रहन-सहन बिहार निवासियों से अत्यधिक मिलता जुलता है और यहाँ चमारों की संख्या भी अधिक है, अतः यह संभवतः वही प्रदेश है, जहाँ पर उक्त चमारों के छत्तीस घर आकर बस गये थे और कुछ समय पश्चात् छत्तीस घर शब्द "छत्तीसगढ़" में परिवर्तित हो गया।

1. मध्यप्रदेश का इतिहास डा. हीरालाल पृ 19

2. आ. स. रि. कनि. भाग 17, पृ. 26

कुछ विद्वानों ने 'छत्तीसगढ़' शब्द की उत्पत्ति 'चेदीशगढ़' शब्द से बताई है। उनके अनुसार इस प्रदेश में चेदिवंश राज्य करता था। अतः उसी कारण से इस प्रदेश का उक्त नाम चेदीशगढ़ पड़ा, जो बाद में परिवर्तित होकर छत्तीसगढ़ हो गया। परन्तु चेदि राजाओं के अभिलेखों में कहीं भी इस शब्द का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। उनके अभिलेखों में भी इस प्रदेश को 'कोशल' अथवा 'दक्षिण कोशल' कहा गया है। एक अन्य मत के अनुसार इस प्रदेश का नाम इस प्रदेश में स्थित किलों की संख्या के आधार पर पड़ा। परन्तु छत्तीसगढ़ में स्थित किलों की संख्या छत्तीस से अधिक प्राप्त होती है। फिर भी यह निश्चित है कि इस प्रदेश का प्राचीन नाम 'कोशल' अथवा 'दक्षिण कोशल' था। इसका 'दक्षिण कोशल' नाम अवश्य ही इसे उत्तर कोशल से जिसकी राजधानी अयोध्या में थी, भिन्न प्रकट करने के कारण ही पड़ा।

'दक्षिण कोशल' की प्राचीन राजधानी सिरपुर (प्राचीन श्रीपुर) में स्थित थी। आधुनिक सिरपुर रायपुर जिले की महासमुन्द तहसील में महानदी के पूर्वी तट पर स्थित है। रायपुर से सड़क द्वारा जाने पर इसकी दूरी लगभग 83 किलोमीटर पड़ती है। बम्बई से कलकत्ता जाने वाला राष्ट्रीय मार्ग नं. 6 रायपुर से सम्बलपुर होते हुए जाता है। सिरपुर इस राष्ट्रीय मार्ग से लगभग 16 किलोमीटर उत्तर की ओर नदी तट पर स्थित है। नदी के किनारे-किनारे जाने पर राजिम से 64 किलोमीटर एवं आरंग से 24 किलोमीटर उत्तर की ओर सिरपुर की स्थिति है। सिरपुर तक पहुँचने के लिए रायपुर से बस द्वारा महासमुन्द पहुँचकर, वहाँ से अन्य बस द्वारा, जो कि महासमुन्द से सिरपुर जाती है, जाया जा सकता है। परन्तु राष्ट्रीय मार्ग नं. 6 से सिरपुर तक का मार्ग केवल अच्छे मौसम में ही चलने योग्य है। निजी वाहन होने पर सिरपुर तक पहुँचने के लिए महासमुन्द जाने की आवश्यकता नहीं है, अपितु राष्ट्रीय मार्ग नं. 6 से कौवाझर नामक गाँव तक जाने के पश्चात् उसके कुछ आगे से सिरपुर के लिए मार्ग जाता है। सिरपुर में ठहरने के लिए एक विश्राम स्थल है, जिसके आरक्षण के लिए अनुविभागीय अधिकारी, महासमुन्द से सम्पर्क साधना चाहिए।

आधुनिक सिरपुर में लगभग 80 घर हैं, परन्तु प्राचीन भग्नावशेष दूर-दूर तक फैले हुए हैं। महानदी के पूर्वी तट पर स्थित सिरपुर घनघोर जंगल के मध्य में बसा हुआ है। यह वनों का वह भाग है, जिसे प्राचीनकाल में दण्डकारण्य कहा जाता था। आधुनिक सिरपुर के चारों ओर जंगल इस प्रकार बढ़ गया है कि इसके बहुत से पुरावशेष जंगल की घनी झाड़ियों में लुप्तप्राय हो गये हैं। फिर भी सिरपुर के अधिकांश भग्नावशेष लगभग दो किलोमीटर की लम्बाई एवं एक किलोमीटर की चौड़ाई में फैले हैं। छुटपुट रूप में इसके भग्नावशेष लगभग 10 किलोमीटर की दूरी तक भी पाये जाते हैं।

"सिरपुर" शब्द "श्रीपुर" का अपभ्रंश है और श्रीपुर का सर्वप्रथम उल्लेख पाँचवी एवं छठी शताब्दी में दक्षिण महाकोशल में शासन करने वाले शरभपुरीय राजाओं के अभि-

लेखों में प्राप्त होता है।¹ इस वंश के अंतिम दो राजा महामुदेवराज एवं महाप्रवरराज ने अपने कुछ अभिलेख श्रीपुर से प्रसारित करवाये थे। इसके पश्चात् दक्षिण कोशल में छठी एवं सातवीं शताब्दी में राज्य करने वाले पाण्डुवंशीय राजाओं की यह प्रख्यात राजधानी हुई थी। शरभपुरीय राजा जिनके अभिलेखों में हमें सर्वप्रथम 'श्रीपुर' का उल्लेख मिलता है, वैष्णव धर्म के मानने वाले थे। उनके अभिलेखों की मुहरों पर गज-लक्ष्मी का चित्र विशेष रूप से प्राप्त होता है। संभव है 'श्रीपुर' का नामकरण इस तथ्य से कुछ संबन्ध रखता हो।² प्राप्त प्रमाणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि पाण्डु-वंशियों के पश्चात् श्रीपुर को दक्षिण कोशल की राजधानी रहने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। कल्चुरी नरेशों ने अपनी राजधानी रतनपुर में स्थापित की। फिर भी सिरपुर में प्राप्त अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर लगभग बारहवीं शताब्दी तक यह नगर विशेष वैभवपूर्ण रहा। तत्पश्चात् इसका ह्रास प्रारम्भ हुआ और आज हम उसे केवल खण्डहरों के नगर के रूप में ही जानते हैं।

स्थानीय अनुश्रुतियाँ 'श्रीपुर' का सम्बन्ध महाभारत काल से जोड़ती हैं और इसके इतिहास को अधिक प्राचीन काल तक ले जाने का प्रयास करती हैं। वर्तमान स्थिति में इन अनुश्रुतियों की ऐतिहासिक सत्यता को निश्चित रूप में मानना कठिन है, परन्तु यह सत्य है कि अद्यावधि उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार राजिम, आरंग और सिरपुर छत्तीस-गढ़ के प्राचीनतम स्थल प्रतीत होते हैं।

1. कौवाताल तामपत्र—मुदेवराज, ठाकुरडीया तामपत्र—महाप्रवरराज, (एपी. इ. 22 पृ. 16)

मल्लार तामपत्र - महाप्रवरराज।

2. ए. पी. इ. 22 पृ 17

प्रो. मिराशी का कथन है कि पाँचवीं और छठी शताब्दी के पूर्व श्रीपुर का अस्तित्व अज्ञात है और उनका मत है कि हो सकता है शरभपुर वंश के अंतिम राजा महाप्रवरराज ने श्रीपुर की स्थापना की हो। फिर भी श्रीपुर में प्रसन्नमात्र के सिक्के की प्राप्ति एवं मुदेवराज के कौवाताल अभिलेख में श्रीपुर का उल्लेख इस तथ्य के प्रमाण हैं कि श्रीपुर महाप्रवरराज के पूर्व भी महत्वपूर्ण स्थल था।

अध्याय 2

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(चौथी शताब्दी से पूर्व)

डा. मो० ग० दीक्षित ने 1953-54, 1954-55 एवं 1955-56 में सागर विश्वविद्यालय एवं मध्यप्रदेश शासन के पुरातत्व विभाग की ओर से सिरपुर में उत्खनन कार्य किया था ।¹ इसकी रिपोर्ट अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है । उन्होंने सिरपुर स्थित लगभग समस्त महत्वपूर्ण प्राचीन स्थलों का उत्खनन किया और इस परिणाम पर पहुँचे कि सिरपुर का कोई भी अवशेष पाँचवीं शताब्दी के पूर्व का प्राप्त नहीं है । समस्त संभाव्य प्राचीन स्थलों पर उन्हें प्राकृतिक मिट्टी (NATURAL SOIL) के ऊपर जिस सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए वे पाँचवीं शताब्दी के पूर्व के नहीं हैं । उत्खनन के पूर्व एवं पश्चात् जो भी अवशेष सिरपुर से प्राप्त हुए हैं वे सब पाँचवीं शताब्दी के बाद के हैं । इस प्रकार आज तक प्राप्त समस्त पुरातात्विक प्रमाणों से सिरपुर की प्राचीनता पाँचवीं शताब्दी से पूर्व नहीं जाती । फिर भी यह निश्चित है कि कोई भी नगर अपने गौरवशाली रूप में एकाएक उत्पन्न नहीं हो जाता । अवश्यमेव उसकी स्थिति किसी न किसी रूप में रहती है । सिरपुर में यद्यपि भौतिक प्रभाव पाँचवीं शताब्दी के पूर्व के नहीं मिलते, फिर भी जिस समृद्धिशाली रूप में श्रीपुर पाँचवीं और छठवीं शताब्दी तथा उत्तर काल में था, उससे प्रतीत होता है कि अवश्यमेव उसके विकास की भूमिका और भी प्राचीन काल में रही होगी । इस सम्बन्ध में स्थानीय लोक-कथाएं एवं अन्य साहित्यिक प्रमाण हमें सिरपुर के अधिक प्राचीन स्वरूप की ओर दृष्टिपात करने को विवश करते हैं, और विशेष रूप से महाभारत काल से इसके सम्बन्ध को अधिक संभावित बना देते हैं ।

महानदी एवं उसकी सहायक नदियों का पुरातात्विक अन्वेषण प्राचीनकालीन संस्कृतियों के संदर्भ में पूर्णरूपेण नहीं हो पाया है । ये संस्कृतियाँ विशेष रूप से नदियों के किनारे प्राप्त होती हैं । महानदी एवं उनकी सहायक नदियों के किनारे भी कुछ पाषाण-कालीन संस्कृतियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं । विशेष रूप से महानदी की सहायक शिवनाथ नदी के किनारे लगभग चार पाँच स्थलों पर सीरीज दो (SERIES TWO) के पाषाण-

1. इ. आ. रि. 1953-54, 1954-55, 1955-56.

कालीन अस्त्र प्राप्त हुए हैं। फिर भी सिरपुर के समीप इस प्रकार के अस्त्रों की खोज नहीं हो पाई है। अतः पाषाण काल के सिरपुर की क्या स्थिति थी, यह अभी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। सिरपुर नदी के तट पर स्थित है, अतः संभव है कि खोज करने पर पूर्व, मध्य अथवा नवपाषाण-युग की संस्कृति के चिह्न यहाँ प्राप्त हों। पूर्व एवं मध्य पाषाणयुग के अस्त्र समीपवर्ती क्षेत्रों में मिलते हैं। साथ ही इससे थोड़ी दूर पर रायगढ़ में स्थित सिंहनपुर एवं कबरा पहाड़ की सीता बेंगा और जोगीमारा गुफाएं भी प्राप्त होती हैं।

ताम्र पाषाण संस्कृति के अवशेष मध्यप्रदेश के एरण में प्राप्त हो चुके हैं। पश्चिम से पूर्व की ओर पाँडुयजार ढीपी (बंगाल) तक इस संस्कृति का विकास किस मार्ग से हुआ यह अभी तक अज्ञात है। सिरपुर की स्थिति इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। ऋग्वेदिक काल में दक्षिण कोशल का कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। उत्तर-वैदिककालीन साहित्य में अवश्य ही इस प्रदेश से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त होते हैं। शतपथब्राह्मण में पूर्व एवं पश्चिम समुद्र का उल्लेख प्राप्त होता है।¹ उत्तर वैदिक काल में इस प्रदेश में अनार्य जातियों का निवास था। अगस्त्य संभवतः सर्वप्रथम आर्य थे, जिन्होंने विन्ध्य पर्वत को लाँघकर दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता का प्रचार किया।

वाल्मीकि-रामायण के बालकाण्ड में ऋषि वशिष्ठ राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में सुमन्त से कोशल के राजा भानुमन्त को बुलाने को कहते हैं :-

“तथा कोशल-राजानं भानुमन्तं सुसंस्कृतम्”

स्पष्ट है कि कोशल का राजा भानुमन्त अवश्यमेव दक्षिण कोशल का राजा था, परन्तु उसकी राजधानी दक्षिण कोशल में कहाँ थी, यह ज्ञात नहीं है। वाल्मीकि-रामायण के टीकाकार ने कौशल्या को भी दूसरे कोशल देश के राजा की पुत्री बताया है,² जो कि संभवतः दक्षिण कोशल ही था। रामायण के उत्तर काण्ड में एवं वायुपुराण में राम के पुत्र कुश की राजधानी ‘कुशस्थली’ अथवा ‘कुशावती’ विन्ध्यपर्वत की तलहटी अथवा उसके बीच में स्थित बतायी गयी है। परन्तु सिरपुर का इन ग्रन्थों में कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

सिरपुर का प्राचीनतम स्वरूप स्थानीय लोक-कथाओं अथवा साहित्य के आधार पर महाभारत-काल में प्राप्त होता है। ऐसा प्रचलित है कि सिरपुर ही महाभारतकालीन अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन की राजधानी थी और इसका प्राचीन नाम मणिपुर अथवा

1. 1, 6, 3, 11

2. कोशलात्मजा, कौशलस्य कोशल नृपतेरात्मजा दुहिता कौशल्या, सा तु श्रीराममाता दशरथराजपत्नी च॥

चित्रांगदपुर था। सिरपुर के समस्त प्राचीन स्थलों का भलीभाँति उत्खनन नहीं हो सका है। महाभारत का समय लगभग 1000 ई.पू. अनुमानित किया जाता है।¹

स्थानीय किंवदन्ती है कि विलासपुर जिले में स्थित रतनपुर बभ्रुवाहन की राजधानी (मणिपुर) था, क्योंकि 'रत्न' शब्द 'मणि' का पर्यायवाची है। इसी के साथ साथ कुछ विद्वानों ने मणिपुर राज्य (त्रिपुरा राज्य के समीप) को बभ्रुवाहन की राजधानी बताया है। महाभारत के आदि पर्व में² वर्णन आता है कि जिस समय अर्जुन को एक वर्ष का वनवास हुआ था, उस समय वे मणिपुर गये थे। ऐसा वर्णन है कि उत्तर दिशा का भ्रमण करके अर्जुन पूर्व दिशा में गये और अंग, बंग और कर्लिंग देश का भ्रमण किया। कर्लिंग देश को पार कर तपस्वियों से शोभित महेन्द्र पर्वत को देखा, फिर समुद्र के किनारे से होते हुए मणिपुर गये:—

महेन्द्रपर्वतं दृष्ट्वा तापसैरुपशोभितम् ।

समुद्रतीरेष शनैर्मणिपुरंतुजगामह ॥

महाभारत 214,13

उपर्युक्त महेन्द्र पर्वत सिहावा की पहाड़ियाँ हैं, जो कि पूर्वी समुद्र तक फैली हैं और इसी महेन्द्र-पर्वत पर परशुराम का आश्रम भी था। जहाँ जाकर कर्ण ने परशुराम से रणदीक्षा ली थी।³

अर्जुन महेन्द्र पर्वत से समुद्र के किनारे किनारे मणिपुर गये। यदि आधुनिक मणिपुर राज्य को, जो कि त्रिपुरा के समीप स्थित है, मणिपुर मानते हैं, तो यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि मणिपुर समुद्र के किनारे स्थित था और अर्जुन समुद्र के किनारे किनारे ही मणिपुर गये। परन्तु पूर्व में यह भी वर्णन है कि पहले अर्जुन उत्तर एवं पूर्व दिशा का भ्रमण करके अंग, बंग और कर्लिंग होकर महेन्द्र पर्वत पहुँचे और वहाँ से मणिपुर गये। यदि उन्हें मणिपुर जाना था तो वे पहले ही वहाँ चले जाते। इतना दक्षिण जाकर पुनः उत्तर पूर्व की ओर इतनी दूर लौटना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि

1. कल्चरल फोरम, 1961, पृ. 25-26

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक श्री बी.बी. लाल ने हस्तिनापुर एवं अन्य महाभारत-कालीन स्थलों के उत्खनन से प्राप्त सामग्री पर यह अनुमान किया है कि संभवतः चित्रित धूम्र वर्ण मिट्टी के बर्तनों (PAINTED GREYWARE) की संस्कृति महाभारतकालीन है। कार्वन 14 के द्वारा प्राप्त इन मिट्टी के बर्तनों की संस्कृति का समय ई.पू. 11 वीं शताब्दी (अंतरंजीखेड़ा) तक जाता है

2. महाभारत आदि पर्व अध्याय 214, श्लोक 13

3. महाभारत शांति पर्व 2, 17

तत्र कर्णस्य वसतो महेन्द्रे स्वर्गसंस्थिते ।

गन्धर्वैः राक्षसैर्यक्षैर्देवैश्चासीत्समागमः ॥

आधुनिक मणिपुर राज्य पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर स्थित है अतः प्रतीत होता है कि मणिपुर को महेन्द्र पर्वत (सिहावा की पहाड़ियाँ) के समीप तथा कलिंग के समीप होना चाहिये । साथ ही उसे समुद्र तट पर होना चाहिए । यदि सिरपुर को मणिपुर मानते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि वह समुद्र तट पर नहीं है । फिर भी उक्त श्लोक में यह स्पष्ट नहीं है कि मणिपुर समुद्र तट पर ही स्थित था । वह समुद्र तट से हटकर भी हो सकता है । केवल अर्जुन के जाने का मार्ग समुद्र के किनारे से होकर था । फिर भी यदि सिरपुर ही मणिपुर था तो कवि ने महानदी का वर्णन क्यों नहीं किया ? जबकि सिरपुर बिलकुल उसके तट पर ही स्थित है और महाभारत में कई स्थानों पर महानदी (चित्रोत्पला) का वर्णन है । इन सब तथ्यों के प्रकाश में सिरपुर को मणिपुर मानने की बात संदिग्ध है । यदि यह मान लेते हैं कि महानदी का वर्णन करना कवि के लिए आवश्यक नहीं था तो सिरपुर को प्राचीन मणिपुर माना जा सकने में, विशेष कठिनाई नहीं है, जबकि स्थानीय लोककथाएँ पूर्ण-रूपेण इसका समर्थन करती हैं ।

मणिपुर का दूसरा नाम चित्रांगदपुर भी था । चित्रवाहन वहाँ का राजा था, जिसकी पुत्री चित्रांगदा के साथ अर्जुन ने विवाह किया था एवं उससे बभ्रुवाहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् अर्जुन दक्षिण दिशा की ओर चले गये थे । सर-एलेक्जेंडर कनिंघम ने भी सिरपुर को ही मणिपुर¹ माना है । उनके अनुसार टालेमी ने इसका वर्णन किया है । टालेमी का 'एडीसथ्री' महाकोशल है जो कि एडीसेथ्रन नामक पर्वत श्रेणी से दक्षिण में घिरा है । 'एडीसेथ्रन' महेन्द्र पर्वत के लिए प्रयुक्त हुआ है । टालेमी का "सगेडा मेट्रोपालिस" चित्रांगदपुर राजधानी का ही संक्षिप्त रूप है । कनिंघम ने महानदी को 'सुक्तिमती' नदी माना है । बेगलर का कहना है कि खरोद में उन्हें महानदी का नाम चित्रा पालवती बताया गया । इसके अतिरिक्त सिरपुर के दक्षिण में 'चिरखा' ताल है । इन नामों की एकरूपता के कारण कनिंघम ने यही सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सिरपुर ही प्राचीन मणिपुर अथवा चित्रांगदपुर था जो कि बभ्रुवाहन की राजधानी थी । सिरपुर के कुछ खण्डहर आज भी बभ्रुवाहन के नाम से सम्बद्ध बताये जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त रतनपुर के अवशेष उतनी प्राचीनता तक नहीं पहुँचते हैं, जितने प्राचीन सिरपुर के अवशेष हैं । उक्त तथ्यों के कारण त्रिपुरा के समीप का मणिपुर भी महाभारतकालीन मणिपुर प्रतीत नहीं होता है । अभी तक के प्राप्त प्राचीन अवशेषों के आधार पर सिरपुर, राजिम और आरंग ही छत्तीसगढ़ के प्राचीनतम स्थल प्रतीत होते हैं ।

1. आ. सर्वे रिपोर्ट भाग 17, पृष्ठ 27

2. आ. सर्वे रिपोर्ट भाग 7, पृ. 186-193

अतः मणिपुर को सिरपुर मानने की संभावना अधिक प्रमाणीकृत जान पड़ती है। महा-भारत ग्रीष्म पर्व में महानदी का वर्णन इस प्रकार है:—

उत्पलेखं समासाद्यश्वचित्रा माहेश्वरी ।

चित्रोत्पलेति कथिता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ¹

महाभारत के नलोपाख्यात में वर्णन आता है कि कोशल का राजा उस समय ऋतुपर्ण था। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर कोशल का वर्णन महाभारत में आता है। विशेषकर भीम, अर्जुन, सहदेव आदि की दिग्विजयों के वर्णन में कोशल का वर्णन आता है। परन्तु कोशल की राजधानी अथवा राजा का उल्लेख विस्तृत रूप से मिलता नहीं है। विभिन्न पुराणों एवं अन्य प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी कोशल का वर्णन है, परन्तु सिरपुर का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

उत्खनन द्वारा प्राप्त सामग्री के आधार पर एवं कार्वन 14 द्वारा प्राप्त तिथियों के आधार पर चित्रित धूसर भाण्ड कला (PAINTED GREYWARE) को प्रायः महाभारतकालीन माना जाता है। ये अवशेष हस्तिनापुर, अतरजीखेड़ा, उज्जयिनी, इन्द्रप्रस्थ और कौशाम्बी आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। उसी की समकालीन तथा उससे भी पूर्व की ताम्र-पाषाणयुगीन भाण्डकला मध्यप्रदेश के अन्य स्थानों जैसे एरण, माहिष्मती आदि स्थानों पर प्राप्त हुई है। परन्तु सिरपुर में अभी तक ऐसे कोई प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं, जिनसे उसे महाभारत-काल की प्राचीनता तक पहुँचाया जा सके। केवल अनुश्रुति एवं साहित्यिक प्रमाण ही उसे महाभारत-काल से सम्बद्ध करते हैं।

महाभारतकालीन इस अनुश्रुति के पश्चात् ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक छत्तीसगढ़ अथवा दक्षिण कोशल का इतिहास स्पष्ट नहीं है। केवल यत्र तत्र बिखरे हुए अभिलेखों एवं सिक्कों तथा यात्राविवरणों से हम इस अवधि के दक्षिण कोशल के इतिहास एवं उससे सिरपुर की स्थिति का आंशिक अनुमान लगा सकते हैं। ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में महावीर और बुद्ध के समकालीन महाजन-पदों के समय में सिरपुर की क्या स्थिति थी, कहा नहीं जा सकता। महावीर के समय में कलिंग में जैनधर्म का प्रचार था। संभव है उसका प्रचार दक्षिण कोशल पर भी पड़ा हो। दक्षिण कोशल के विभिन्न भागों से कुछ ऐसे आहत सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिन्हें ई. पू. छठवीं शताब्दी और उससे भी पूर्व का अनु-किया जाता है। ये चाँदी के पंचमार्क सिक्के सोनपुर राज्य में पाये गये थे। दो सिक्के महानदी के किनारे सम्बलपुर में पाये गये थे जो कि दक्षिण कोशल का ही एक भूभाग था। बिलासपुर जिले में महानदी के तट पर स्थित 'बालपुर' से भी कुछ ऐसे सिक्के प्राप्त

हुए हैं। इसी प्रकार रायगढ़ में महानदी की सहायक माँच नदी के बाँये तट पर स्थित 'तारापुर' में तथा बालाघाट के समीप 'छापेबाड़ा' नामक गाँव से भी इस प्रकार के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इन सिक्कों की तिथि ई. पू. छठवीं शताब्दी निश्चित की गई है। इसके अतिरिक्त बिलासपुर जिले की जाँजगीर तहसील के 'ठठारी' (अकलतरा) ग्राम में भी 253 चाँदी के पंचमार्क सिक्के प्राप्त हुए हैं। पंचमार्क सिक्कों की इन उपलब्धियों से स्पष्ट होता है कि अवश्य ही ई. पू. पाँचवीं और छठवीं शताब्दी में सिरपुर के समीपवर्ती प्रदेशों में ये सिक्के प्रचलित थे और अवश्य ही सिरपुर इससे अछूता न रहा होगा। (विशेष टिप्पणी)

नन्द मौर्यकालीन दक्षिण कोशल के सम्बन्ध में केवल इतना प्रमाण मिलता है कि नन्दों और मौर्यों का राज्य दक्षिण में मैसूर तक फैला था। ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अशोक ने दक्षिण कोशल की राजधानी के दक्षिण दिशा में एक स्तूप बनवाया था। जहाँ पर कि महात्मा बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय दिया था। यदि सिरपुर को ही व्हेनसांग के वर्णन के अनुसार दक्षिण कोशल की राजधानी माना जाय तो महात्मा बुद्ध सिरपुर आये थे और यह अशोक के राज्य में सम्मिलित था।¹

मौर्य के पश्चात् सातवाहन काल में सिरपुर की स्थिति के सम्बन्ध में व्हेनसांग का विवरण विशेष सहायक है। व्हेनसांग ने लिखा है कि दक्षिण कोशल का राजा नागार्जुन के समय में सद्रह था।² कनिंघम ने 'सद्रह' शब्द को सातवाहन माना है।³ साधारणतया इस सातवाहन राजा को गौतमीपुत्र सातकर्णी माना जाता है। यदि व्हेनसांग के द्वारा वर्णित दक्षिण कोशल की राजधानी सिरपुर ही है तो सिरपुर में हमें सातवाहनकालीन अवशेष ढूँढ़ने होंगे। इसी प्रकार बिलासपुर जिले में बाज़पुर में आपीलक का सिक्का प्राप्त हुआ है। बिलासपुर के किरारी ग्राम में प्राप्त काष्ठ-स्तंभ लेख की लिपि सातवाहनकालीन है। साथ ही गुंजी (बिलासपुर) में प्राप्त कुमारवदत्त का अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। यह संभवतः सातवाहन का सामन्त राजा था। रायगढ़ जिले में कबरा पहाड़ और सिंहनपुर की गुफाओं 'सीतावेँगा' और 'जोगीमारा' में प्राप्त अभिलेख भी मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में है। बिलासपुर में प्राप्त रोमन सिक्के भी तत्कालिक अन्तर्देशीय व्यापार

*विशेष टिप्पणी—पुस्तक लिखते समय ही लेखक के पास एक सज्जन कुछ चाँदी के सिक्के लेकर आये और उन्होंने बतलाया, आरंग रायपुर मार्ग पर आरंग से लगभग 4-5 मील पर स्थित लखौली मार्ग पर स्थित गुजरा गाँव के एक तालाब में ये सिक्के प्राप्त हुए। प्रारम्भिक निरीक्षण करने पर ये आहत सिक्के ज्ञात हुए। अभी तक आरंग के पास ऐसे सिक्के प्राप्त नहीं हुए थे। इन सिक्कों की प्राप्ति से आरंग की प्राचीनता, ई. पू. 5 वीं शताब्दी तक सग्लता से जा सकती है। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

1. ट्रेबेल्स आफ व्हेनसांग—सैमुएल बील—भाग 4
2. वही-पृ. 415
3. दी एन्शियेन्ट ज्याग्रफी ऑफ इंडिया—पृ. 439.

की ओर इंगित करते हैं। उक्त समस्त प्रदेश दक्षिण कोशल में ही स्थित हैं। संभवतः सिरपुर उस समय एक महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। यद्यपि इस प्रकार के अवशेष अभी सिरपुर से प्राप्त नहीं हुए हैं।

इसी प्रकार कुषाण-कालीन अवशेष भी छत्तीसगढ़ में प्राप्त हुए हैं गुप्त-वाकाटक काल में सिरपुर के सम्बन्ध में केवल अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही अनुमान लगाया जा सकता है। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ लेख में समुद्रगुप्त की दक्षिणविजय का वर्णन करते समय प्रशस्तिकार ने सर्वप्रथम कोशल के राजा महेन्द्र का वर्णन किया है। परन्तु यह राजा किस वंश का था, इसकी राजधानी कहाँ थी? इसका कोई उल्लेख नहीं है। श्री पी.एल. मिश्रा ने नलवश के राजा महेन्द्रवर्मन को ही इलाहाबाद प्रशस्ति का महेन्द्र बताया है। दक्षिण कोशल में महेन्द्रादित्य नामक एक राजा के स्वर्ण सिक्के पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों ने आरंग में प्राप्त गुप्त संवत् 181 के भीमसेन द्वितीय के अभिलेख में वर्णित शूरा के वंश से इसे सम्बन्धित करने का प्रयास किया है। परन्तु उक्त समस्त धारणाएँ न तो पूर्णरूपेण ठोस प्रमाणों पर आधारित हैं और न पूर्णरूपेण संतोषजनक समाधान कर पाती हैं। समुद्रगुप्त का समय 375 ई. है। उस समय अवश्यमेव महेन्द्र नामक राजा दक्षिण कोशल में राज्य करता था। परन्तु तात्कालिक दक्षिण कोशल के समस्त राजवंशों में किसी से उसे संतोषजनक रूप से अभी तक सम्बद्ध नहीं किया जा सका है।

ईसा की चौथी शताब्दी में वाकाटकों का प्रभाव भी दक्षिण कोशल पर था, इसके प्रमाण पृथ्वीषेण एवं हरिषेण के अभिलेखों से मिलते हैं। अजन्ता अभिलेख में नरेन्द्रसेन के चचेरे भाई हरिषेण को कुन्तल, अवन्ति, लाट, कोसल, कलिग और आन्ध्र का विजेता बताया गया है। परन्तु इन अभिलेखों में कहीं भी सिरपुर का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

दिसम्बर 1972 के प्रथम सप्ताह में गुप्तकालीन 9 स्वर्ण सिक्के, जो कि दुर्ग जिले में स्थित वानवरद ग्राम में प्राप्त हुए थे, प्रकाश में आये हैं। इनमें से एक सिक्का 'काच' का है तथा एक कुमारगुप्त प्रथम का है। शेष 7 सिक्के चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के हैं, जिनमें से 6 धनुधर प्रकार के और एक अश्वारोही प्रकार का है। इन सिक्कों का अध्ययन (DECIPHERMENT) स्वयं लेखक ने ही किया है। यद्यपि इसके पूर्व बिलासपुर में एक गुप्तस्वर्ण सिक्का प्राप्त होने की सूचना प्राप्त होती है, परन्तु उपरोक्त उपलब्धि सर्वप्रथम महत्वपूर्ण उपलब्धि है। छत्तीसगढ़ में गुप्त शासकों के सिक्कों की प्राप्ति इस समस्या पर पुनर्विचार करने का क्षेत्र प्रदान करती है कि क्या गुप्तों का इस क्षेत्र पर प्रत्यक्ष शासन था?

अध्याय 3

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(चौथी शताब्दी के पश्चात्)

पाषाण काल से लेकर ईसा की चौथी और पाँचवीं शताब्दी तक सिरपुर के संबन्ध में कोई ठोस पुरातात्विक प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। केवल अनुश्रुतियों एवं पार्श्व-उल्लेखों से ही इस अवधि में सिरपुर की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है परन्तु ईसा की चौथी और पाँचवीं शताब्दी में हमें सिरपुर की स्थिति के प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त होने लगते हैं।

1953-54 में डा. मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित ने सागर विश्वविद्यालय की ओर से एवं 1954-55 व 55-56 में मध्यप्रदेश शासन पुरातत्व विभाग की ओर से सिरपुर में उत्खनन कार्य करवाया था। प्राचीन नगर के उत्खनन के पश्चात् उन्हें वहाँ तीन कालों के अवशेष मिले। प्रथम काल का समय उन्होंने पाँचवीं शताब्दी का अन्तिम भाग निश्चित किया क्योंकि उस काल का प्रसन्नमात्र का सिक्का उन्हें प्राप्त हुआ। प्रथम काल प्राकृतिक मिट्टी के ऊपर है। प्रसन्नमात्र शरभपुरीय वंश का शासक था जिसके सिक्के अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुए हैं। शरभपुरीय शासक महासुखदेवराज एवं महाप्रवरराज के अभिलेखों में सर्वप्रथम श्रीपुर का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त सिरपुर के अन्य स्थानों पर भी श्री दीक्षित ने उत्खनन करवाया परन्तु कहीं भी प्राचीन अवशेष पाँचवीं शताब्दी के पूर्व के प्राप्त नहीं होते हैं।¹

शरभपुरीय राजाओं के पूर्व सिरपुर की स्थिति क्या थी यह पूर्णरूपेण स्पष्ट नहीं है। न तो सिरपुर के अवशेष शरभपुरीय राजाओं के पूर्व के प्राप्त होते हैं और न श्रीपुर का उल्लेख उनके पूर्व के अभिलेखों में प्राप्त होता है। फिर भी यदि यह मान लें कि श्रीपुर का नाम शरभपुरियों ने ही रखा² और उसे अपनी राजधानी बनाया, जैसा कि प्रो. मिराशी का अनुमान है, तो भी उसका अस्तित्व इसके पूर्व अवश्य रहा होगा भले ही उसके अवशेष अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं।

1. डा. एम. जी. दीक्षित ने शिव मन्दिर 1, प्राचीन नगर-स्थल, छोटा किला तथा बौद्ध बिहारों का उत्खनन करवाया था परन्तु कहीं भी उन्हें पाँचवीं शताब्दी के पूर्व के अवशेष प्राप्त नहीं हुए।

2. एपी. इ. 22, पृ. 17

सिरपुर से लगभग 24 किलोमीटर की दूरी पर महानदी के पश्चिमी तट पर स्थित आरंग नामक स्थान पर गुप्त संवत् का एक अभिलेख भीमसेन द्वितीय का प्राप्त हुआ है। जिसमें एक राजवंश की 6 पीढ़ियों का वर्णन हुआ है। उस वंश का आदि शासक शूरा था। उसका पुत्र दयित (दयितवर्मन प्रथम), उसका पुत्र विभीषण, उसका पुत्र भीमसेन प्रथम और उसका पुत्र दयितवर्मन द्वितीय तथा उसका पुत्र भीमसेन द्वितीय था, जिसके शासन काल का यह अभिलेख है। इस वंश को अभिलेख में 'राजषितुल्य कुल' कहा गया है। डा. हीरालाल ने इस कुल (राजषितुल्य कुल) को खारवेल के वंश से संबंधित होने का अनुमान किया है।¹ परन्तु खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख में 'राजषितुल्य कुल' नहीं अपितु "राजषि वंश कुल वितसृतः" लिखा गया है। आरंग का भीमसेन द्वितीय का अभिलेख गुप्त संवत् में है और इसे कुछ विद्वानों ने गुप्त संवत् 281 पढ़ा। परन्तु महामहोपाध्याय प्रो. वा. वि. मिराशी ने इसे गुप्त संवत् 181 पढ़ा है जिससे इसकी तिथि 501 ई. होती है। प्रो. मिराशी के अनुसार इस वंश की 6 पीढ़ियों का समय लगभग 100 वर्ष रहा होगा और इस प्रकार शूरा का समय लगभग 400 ई. के समीप रहा होगा। श्री मिराशी का अनुमान और आगे यह है कि कदाचित् इलाहाबाद अभिलेख का महेन्द्र जो कि समुद्रगुप्त के समय (375 ई.) में था, शूरा का पूर्वज रहा होगा और शूरा का यह वंश श्रीपुर में राज्य करता था। फिर भी आरंग से प्राप्त इस अभिलेख में श्रीपुर का कोई उल्लेख नहीं है। चूंकि आरंग श्रीपुर के समीप है अतः संभव है श्रीपुर ही उनकी राजधानी रही हो। प्रो. मिराशी का पुनः अनुमान है कि संभवतः भीमसेन द्वितीय को पराजित करके शरभपुरियों ने पूर्व दिशा से आकर श्रीपुर पर अधिकार कर लिया।² उनका अनुमान है कि यह शूरा पांडुवंशी नन्नराज के अभिलेख में वर्णित सूर्य-घोष है जिसने बुद्ध के मन्दिर का निर्माण किया था और नन्नराज का यह अभिलेख जिसे मांदक से प्राप्त बताया जाता है वास्तव में आरंग से प्राप्त हुआ था।³ इस प्रकार पांडुवंशियों को प्रो. मिराशी ने शूरा के वंश से संबंधित करने का प्रयास किया है। प्रो. मिराशी के अनुमान यद्यपि पूर्णरूपेण ठोस प्रमाणों पर आधारित नहीं हैं फिर भी उन्होंने इस काल के सभी दक्षिण कोशल के राजवंशों की समस्याओं को सुलझाने का पर्याप्त तर्कपूर्ण प्रयास किया है। कनिंघम ने नन्नराज के उक्त अभिलेख की प्राप्ति स्थान मांदक ही बताया है।

1. डा. हीरालाल—मध्यप्रदेश का इतिहास पृ. 22

2. परन्तु श्रीपुर में निम्नतम स्तरों से (प्राकृतिक मिट्टी के ऊपर (प्रसन्नमात्र के सिक्के की उपलब्धि महत्वपूर्ण है। जो कि इस तथ्य की ओर इंगित करती है कि श्रीपुर प्रसन्नमात्र के राज्य में सम्मिलित था। प्रो. मिराशी के कालक्रमानुसार प्रसन्नमात्र को भीमसेन द्वितीय के पूर्व का होना चाहिये। भीमसेन द्वितीय के आरंग अभिलेख में राजधानी का उल्लेख नहीं है। आरंग के अवशेष भी अत्यन्त प्राचीन काल के हैं। क्या आरंग स्वयं उनकी राजधानी नहीं हो सकता? यदि श्रीपुर इस वंश की राजधानी था तो इनके अभिलेखों में श्रीपुर का उल्लेख क्यों नहीं है?

इसके अतिरिक्त श्री अमलानन्द घोष ने ¹ भीमसेन द्वितीय के आरंग अभिलेख की तिथि 281 गुप्त संवत् (601 ई.) पढ़ी है। इस प्रकार विद्वानों में इस सबन्ध में पूर्ण मतभेद है। प्रो. मिराशी के अनुसार सूर्यघोष ने बुद्ध का मन्दिर आरंग में निर्मित करवाया था मांदक में नहीं और इस प्रकार पांडुवंशियों का मांदक से कोई संबन्ध नहीं था।

इस प्रकार यदि प्रो. मिराशी के दृष्टिकोण को सही मान लिया जाय तो शरभपुरीयों के भी पहले पांडुवंश की एक शाखा जिसका अभिलेख आरंग में प्राप्त हुआ है (भीमसेन द्वितीय) सिरपुर में राज्य करती थी और उस शाखा को वहाँ से हटाकर शरभपुरीयों ने श्रीपुर पर अपना अधिकार जमाया। परन्तु श्रीपुर में शरभपुरीयों से पहले शासन करने वाले शूरा के इस वंश के कोई अन्य प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं।

शरभपुरीय वंश :- शरभपुरीय वंश के दो शासकों के अभिलेख सिरपुर से प्रसारित करवाये गये थे। एक सुदेवराज दूसरा महाप्रवरराज। सुदेवराज का कौवाताल ताम्रपत्र उसके राज्य के 7 वें वर्ष में श्रीपुर से प्रसारित किया गया था। इसी प्रकार महाप्रवरराज के ठाकुरडिया और मल्लार ताम्रपत्र भी श्रीपुर से प्रसारित किये गये थे। इसी वंश के एक अन्य शासक प्रसन्नमात्र का एक स्वर्ण का सिक्का डा. मा. ग. दीक्षित को सिरपुर में उत्खनन करते समय निम्नतम स्तर से प्राप्त हुआ था। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि कुछ समय के लिये इन शासकों ने सिरपुर को अपनी राजधानी बनाया था। इस वंश के अन्य शासकों के अभिलेख छत्तीसगढ़ से प्राप्त हुए हैं जो कि अधिकतर उनकी अन्य राजधानी शरभपुर से प्रसारित किये गये थे। इन अभिलेखों की लिपि पेटिकाशीर्ष ब्राम्ही है और बाकाटकों की लिपि से पर्याप्त मिलती है। सिरपुर में पांडव वंश के शासकों के जो अभिलेख प्राप्त होते हैं उनकी लिपि से शरभपुरीय शासकों की लिपि प्राचीन है।² अतः अवश्यमेव शरभपुरीय वंश पांडुवंश के पूर्व हुआ होगा। सिरपुर में निम्नतम स्तर से प्रसन्नमात्र का सिक्का भी इस बात का प्रमाण है कि ये शासक पांडुवंशियों के आने के पूर्व सिरपुर में शासन करते थे। विभिन्न अन्य प्रमाणों के आधार पर इस वंश का समय पाँचवीं शताब्दी का उत्तरार्ध और छठी शताब्दी का पूर्वार्ध रखा गया है।³

1. एपी. इ. 26 पृ. 266

2. शरभपुरीय राजाओं के अभिलेखों की लिपि भवदत्त वर्मन के रीठापुर ताम्रपत्रों की लिपि से बहुत मिलती है। भवदत्त वर्मन के इन अभिलेखों का समय पाँचवीं शताब्दी का उत्तरार्ध और छठी शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित किया गया है। एरण अभिलेख के गोपराज के नाना शरभराज से इस वंश का संबंध स्थापित करने पर इस वंश का समय पाँचवीं और छठी शताब्दी में पड़ता है। (मिराशी एपी. इ. भाग 22, पृ. 17)

3. वही

इस वंश के शासकों के अभिलेखों में इस वंश के संस्थापक का नाम शरभ मिलता है। और संभवतः उसी ने शरभपुर नामक नगर ¹ बसाकर उसे इस वंश की राजधानी बनाया। गुप्त वंशीय भानुगुप्त के एरण अभिलेख ² (गुप्त संवत् 191) 510 ई. में वर्णन आता है कि भानुगुप्त के सामन्त गोपराज के नाना का नाम शरभराज था। प्रो. मिरासी ने इसी शरभराज को शरभपुरीय वंश का संस्थापक बताने का प्रयास किया है। ³ गोपराज और शरभराज के नामों के आगे 'राज' शब्द लगा हुआ मिलता है इसी प्रकार शरभपुरीय वंश के शासकों के नामों में भी अधिकतर 'राज' शब्द मिलता है। नामों की इस साम्यता के अतिरिक्त इस अनुमान का कोई ठोस प्रमाण नहीं है। यदि यह अनुमान सही है तो शरभराज, जो कि गोपराज (510 ई.) का नाना था, को लगभग पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में होना चाहिये और कदाचित् वह भी गोपराज की भाँति गुप्तों का सामन्त रहा है। इस वंश के एक अन्य शासक व्याघ्रराज के मल्लार ताम्रपत्र अभिलेख में इस वंश का नाम 'अमरार्यकुल' दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि संभवतः इस वंश का नाम 'अमरार्यकुल' था। इस वंश के किसी अन्य अभिलेख में इस तथ्य का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। शरभपुरीय राजाओं के अभिलेखों पर लक्ष्मी की मुद्रा प्राप्त होती है। ये राजा वैष्णव धर्म को मानते थे।

इन राजाओं की राजधानी शरभपुर कहाँ थी यह आज तक पूर्णरूपेण निश्चित नहीं हो सका, यद्यपि विद्वानों ने विभिन्न स्थानों पर उसकी स्थिति बताने का प्रयास किया है। सम्बलपुर, सारंगगढ़ शरभवरम, शपपुर अथवा श्रीपुर इनमें से प्रमुख हैं। डा. डी. सी. सरकार ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि चूँकि इस वंश के लगभग सभी अभिलेख सिरपुर के चारों ओर प्रायः रायपुर जिले में पाये गये हैं अतः उनकी राजधानी सिरपुर के समीप ही होनी चाहिये। डा. हीरालाल ने सिरपुर को ही शरभपुर बताया है। ⁴ उनके मतानुसार शरभपुरीयों ने सिरपुर पर पांडुवंशियों के बाद शासन किया और सिरपुर का नाम परिवर्तित करके शरभपुर रखा। परन्तु अब यह प्रायः निश्चित हो गया है कि शरभपुरीय पांडुवंशियों से पहले हुए और महामुदेव के दो अभिलेख एक ही साथ श्रीपुर और शरभपुर से प्रसारित किये गये थे। ⁵ अतः स्पष्ट है कि ये दो नगर अलग अलग थे। इसके अतिरिक्त शूरा के वंशज भी कदाचित् श्रीपुर में ही राज्य करते थे।

-
1. वही
 2. का. इ. 3, पृ. 91
 3. एपी. इ. 22 पृ. 17
 4. एपी. इ. भाग 11, पृ. 180 (याद टिप्पणी)
 5. महामुदेव राजा का सिरपुर ताम्रपत्र वर्ष 7, शरभपुर से प्रसारित किया गया था जबकि 7वें वर्ष में ही उसका कौवाताल ताम्रपत्र श्रीपुर से प्रसारित किया गया था।

और एक ही साथ दो वंशों का शासन श्रीपुर पर होना संभव नहीं है। श्री लोचन प्रसाद पांडेय ने ¹ उड़ीसा के प्राचीन राज्य गंगपुर के प्रधान नगर शर्पपुर अथवा शरभगढ़ को शरभपुर बताया है जो कि अधिक तर्कसंगत जान पड़ता है। परन्तु पूर्णरूपेण विवादरहित नहीं है।

जैसा कि पिपरदुला ताम्रपत्र अभिलेख से स्पष्ट है इस वंश का प्रथम शासक शरभ था, उसके पुत्र का नाम नरेन्द्र था। पिपरदुला ताम्रपत्र ² और कुरुद ताम्रपत्रों ³ में नरेन्द्र का नाम आता है। मेकल के पांडुवंशी राजा भरतबल के ब्रम्हनी ⁴ अभिलेख में वर्णन है कि भरतबल की रानी लोकप्रकाशा कोशल के राजा की पुत्री थी। उस अभिलेख में लोकप्रकाशा को 'अमरजकुलजा' कहा गया है। उल्लेखनीय है कि शरभपुरीय वंश के एक राजा व्याघ्रराज के मल्लार ताम्रपत्र ⁵ में उसे 'अमरायकुल' का कहा गया है। इस प्रकार ब्रम्हनी ताम्रपत्र का 'अमरजकुल' और मल्लार ताम्रपत्र का 'अमरायकुल' एक हो सकते हैं, जिस वंश से कि शरभपुरीय शासक संबंधित थे। अतः उक्त धारणा के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि लोकप्रकाशा शरभपुरीय वंश की थी ⁶ और इस प्रकार से मेकल के पांडुवंशी शरभपुरीयों से संबंधित थे। यह लोकप्रकाशा शरभपुरीय वंश के किस राजा की पुत्री थी यह निश्चित नहीं है परन्तु चूंकि ब्रम्हनी अभिलेख में नरेन्द्र का परोक्ष रूप से उल्लेख है, अतः कुछ विद्वानों ने उसे शरभपुरीय शासक नरेन्द्र की बहन और शरभ की पुत्री बताने का प्रयास किया है। परन्तु प्रो. मिराशी ने ब्रम्हनी अभिलेख में नरेन्द्र को वाकाटक नरेन्द्र सेन माना है, जिसका आधिपत्य मेकल के पांडव उस समय मानते थे।

नरेन्द्र के उक्त दोनों अभिलेख (कुरुद एवं पिपरदुला ताम्रपत्र) शरभपुर से ही प्रसारित किये गये थे अतः श्रीपुर से उसका कोई संबंध प्रतीत नहीं होता। संभवतः नरेन्द्र के समय श्रीपुर में शूरा का वंश शासन करता रहा होगा, जैसा कि प्रो. मिराशी का अनुमान है। नरेन्द्र ने लगभग 24 वर्ष तक राज्य किया, यह बात उसके कुरुद ताम्रपत्र से स्पष्ट है। छठी शताब्दी के प्रारम्भ में शरभपुर का शासन प्रमन्न अथवा प्रसन्नमात्र नामक शासक के हाथ में आया। प्रसन्नमात्र के चाँदी और सोने के सिक्के प्राप्त होते हैं और इसका एक स्वर्ण सिक्का श्री एम.जी. दौक्षित को सिरपुर उत्खनन में निम्नतम स्तर में पांडुवंशीय भवनों के नीचे प्राप्त हुआ। नरेन्द्र के साथ प्रसन्नमात्र का क्या संबंध था यह

1. प्रोसीडिंग्स आफ़ फ़िफ़थ ओरिएण्टल कॉन्फ़रेन्स' पृ. 461

2. इन्डिया हिस्टोरिकल क्वा. जिल्द 19 पृ. 140-45

3. एपी. इ. 31, पृ. 263

4. वही 27, पृ. 132

5. वही 34, पृ. 45

6. एपी. इ. 34, पृ. 48

ज्ञात नहीं होता है। फिर भी प्राप्त प्रमाणों के आधार पर वह संभवतः नरेन्द्र का उत्तराधिकारी और कदाचित् उसका पुत्र था।¹ इस वंश के विभिन्न अभिलेखों में भी प्रसन्नमात्र का उल्लेख आता है। प्रसन्नमात्र ने निडिला नदी के किनारे प्रसन्नपुर नामक नगर भी बसाया था परन्तु उसे अभी तक पहचाना नहीं जा सका है।² सिरपुर में निम्नतम स्तरों में प्रसन्नमात्र के सिक्कों की प्राप्ति महत्वपूर्ण है। यह भी संभव है कि प्रसन्नमात्र के समय श्रीपुर अधिक उन्नत अवस्था में न रहा हो, अपितु एक साधारण ग्राम रहा हो और प्रसन्नमात्र के राज्य में सम्मिलित रहा हो, परन्तु यदि उस समय शूरा का वंश सिरपुर का शासक था तो उक्त बात विरोधाभासपूर्ण है और इसके लिये अन्य प्रमाणों की आवश्यकता है। प्रसन्नमात्र ने अनुमानतः 495 ई. से 510 ई. तक राज्य किया।

प्रसन्नमात्र के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र जयराज हुआ। जिसका उल्लेख (1) आरंग ताम्रपत्र³ (वर्ष 5) 2 - मल्लार ताम्रपत्र⁴ (वर्ष 5) 3 - मल्लार ताम्रपत्र⁵ (वर्ष 9) में आता है। जयराज के सभी अभिलेख यद्यपि शरभपुर से ही प्रसारित किये गये हैं परन्तु प्रो. मिराशी के अनुसार उसका आरंग में प्राप्त ताम्रपत्र इस बात की ओर इंगित करता है कि संभवतः आरंग के आस-पास का समस्त प्रदेश उसने विजित किया⁶ जिसमें कि संभवतः सिरपुर भी सम्मिलित था। क्योंकि इस अभिलेख में यह भी वर्णन है कि उसने अपने सामंतों को पराभूत किया। श्री मिराशी का मत है कि संभवतः यहाँ पर आरंग में प्राप्त अभिलेख के भीमसेन द्वितीय को ही जयराज ने पराजित किया और आरंग के आस-पास का समस्त प्रदेश जिसमें सिरपुर भी सम्मिलित था अपने वंश में कर लिया। उक्त मत के लिये कोई ठोस प्रमाण नहीं है और न ही सिरपुर का अथवा भीमसेन द्वितीय की पराजय का कहीं उल्लेख है। फिर भी उक्त मत अद्यावधि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर अत्यधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। यदि यह बात मान लेते हैं तो इससे स्पष्ट होता है कि ईसा की छठी शताब्दी के प्रारम्भ में सिरपुर पर शरभपुरीय जयराज का राज्य था। परन्तु शरभपुरियों ने इसे अपनी राजधानी नहीं बनाया था। और न ही यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शूरा के वंश की ही यह राजधानी थी। यह भी संभव है कि आरंग ही उनकी राजधानी रही हो। आरंग के अवशेष भी काफी प्राचीन हैं। जयराज के मल्लार ताम्रपत्र (वर्ष 9) से यह स्पष्ट है कि संभवतः उसने नौ वर्ष राज किया।

1. इ. हि. क्वा. 19, पृ. 143

2. एपी. इ. 34, पृ. 49

3. का. इ. इ. 3 पृ. 191-194

4. एपी. इ. 33 पृ. 155

5. एपी. इ. 34 पृ. 28

6. स्टडीज इन इन्डोलॉजी 1 पृ. 240

जयराज के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी कौन हुआ इस संबंध में कुछ विवाद है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर संभवतः मानमात्र जिसका दूसरा नाम दुर्गराज भी था, जयराज का उत्तराधिकारी हुआ। पर मानमात्र जयराज का भाई था। सुदेवराज के खरियार¹ ताम्रपत्र एवं सिरपुर से प्रसारित उसी के ताम्रपत्र से हमें ज्ञात होता है कि मानमात्र के दो नाम थे और वह प्रसन्नमात्र का पुत्र था। मानमात्र के कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होते हैं। संभवतः उसने शरभपुर से ही शासन किया और उसका शासनकाल अल्पकालीन था।

मानमात्र के पश्चात् उसका पुत्र सुदेवराज उसका उत्तराधिकारी हुआ। सुदेवराज के 6 अभिलेख प्राप्त होते हैं जिनमें से पाँच शरभपुर से एवं एक (कौवाताल ताम्रपत्र)² श्रीपुर से प्रसारित किया गया था। क्या इससे यह सिद्ध होता है कि शरभपुर वंश में महासुदेवराज वह प्रथम राजा था जिसने श्रीपुर को अपनी राजधानी बनाया? परन्तु उसके अन्य पाँच अभिलेख शरभपुर से प्रसारित किये गये थे। तो क्या श्रीपुर उसकी दूसरी राजधानी थी? परन्तु नरेन्द्र का कुरुद ताम्रपत्र³ इस बात का साक्ष्य है कि ये राजा अपने अभिलेख राजधानी के अतिरिक्त अन्य स्थानों से भी प्रसारित करवाते थे। महासुदेवराज के श्रीपुर ताम्रपत्र⁴ वर्ष 7 एवं कौवाताल ताम्रपत्र वर्ष 7 में एक महासामन्त इन्द्र बलराज का उल्लेख है जो कि सुदेवराज का सर्वाधिकाराधिकृत (मुख्य मंत्री) था। इस इन्द्र बलराज को पांडुवंशी इन्द्रबल बताया जाता है जो कि पांडुवंशीय उदयन का पुत्र और नन्न का पिता था। इसी आधार पर प्रो. मिराशी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि दक्षिण कोशल के पश्चिमी प्रान्तों में सामन्तों के विद्रोह को दबाने एवं अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये महासुदेव ने श्रीपुर में अपनी दूसरी राजधानी स्थापित की। बाद में इसी सामन्त इन्द्रबल के पौत्र तीवरदेव ने दक्षिण कोशल पर अपना अधिकार जमा लिया और शरभपुरियों को पराजित किया। महासुदेवराज ने संभवतः लगभग 10 वर्ष राज किया क्योंकि उसके रायपुर ताम्रपत्र⁵ में उसका अधिकतम राज्य वर्ष 10 मिलता है।

महासुदेवराज के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी प्रवरराज हुआ जो कि मानमात्र दुर्गराज का पुत्र और महासुदेवराज का अनुज था। इस राजा के केवल दो अभिलेख अभी तक प्राप्त हुए हैं। 1- ठाकुरडीया ताम्रपत्र⁶। 2- मल्लार ताम्र पत्र⁷। ये दोनों

1. एपी. इ. पृ. 170-172

2. एपी. इ. 31 पृ. 314

3. एपी. इ. 31 पृ. 261

4. एपी. इ. 22 पृ. 15

5. का. इ. इ. पृ. 197

6. एपी. इ. 22 पृ. 15

7. एपी. इ. 34

ताम्रपत्र श्रीपुर से प्रसारित किये गये थे, अतः प्रो. मिराशी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि संभवतः महाप्रवरराज ने अपनी राजधानी शरभपुर से हटाकर श्रीपुर में रखी थी। क्योंकि कदाचित् महासुदेवराज का महासामन्त इन्द्रबलराज पश्चिम में अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। खरोद में स्थित लखनेश्वर मन्दिर के एक भग्न प्रस्तर अभिलेख में इन्द्रबल की प्रशंसा की गई है। उसके दो पुत्र ईशानदेव और नन्नराज स्वतंत्र शासक बन चुके थे। जिन्हें दबाने में पहले प्रवरराज को कुछ सफलता मिली, परन्तु बाद में पराजित होना पड़ा। महाप्रवरराज के छोटे भाई व्याघ्रराज का एक अभिलेख मल्लार में प्राप्त हुआ है जो कि पूर्व राष्ट्र में स्थित प्रसन्नपुर से प्रसारित किया गया था। प्रो. मिराशी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि संभवतः यह व्याघ्रराज महासुदेवराज के साथ में पूर्वराष्ट्र में स्वतंत्र सत्ता स्थापित नहीं कर सका, क्योंकि महासुदेवराज के अन्य अभिलेख शरभपुर से प्रसारित पाये जाते हैं। परन्तु कदाचित् महाप्रवरराज के समय में व्याघ्रराज ने पूर्व राष्ट्र में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली, क्योंकि उसका बड़ा भाई महाप्रवर पश्चिम में नये उठने वाले स्वतंत्र शासक नन्नराज एवं ईशानदेव के साथ युद्ध में रत था। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम दोनों ओर विद्रोह होने के कारण संभवतः महाप्रवरराज उन्हें दबाने में सफल न हो सका और इसी अवसर का लाभ उठाकर नन्नराज के पुत्र तीवरदेव ने उस पर आक्रमण करके पूर्ण दक्षिण कोशल पर अपना अधिकार जमा लिया, क्योंकि इसी समय हमें तीवरदेव के अभिलेख श्रीपुर एवं उसके समीपवर्ती प्रदेशों से प्राप्त होते हैं। जिनमें कि तीवरदेव को सम्पूर्ण कोशल का स्वामी ¹ कहा गया है।

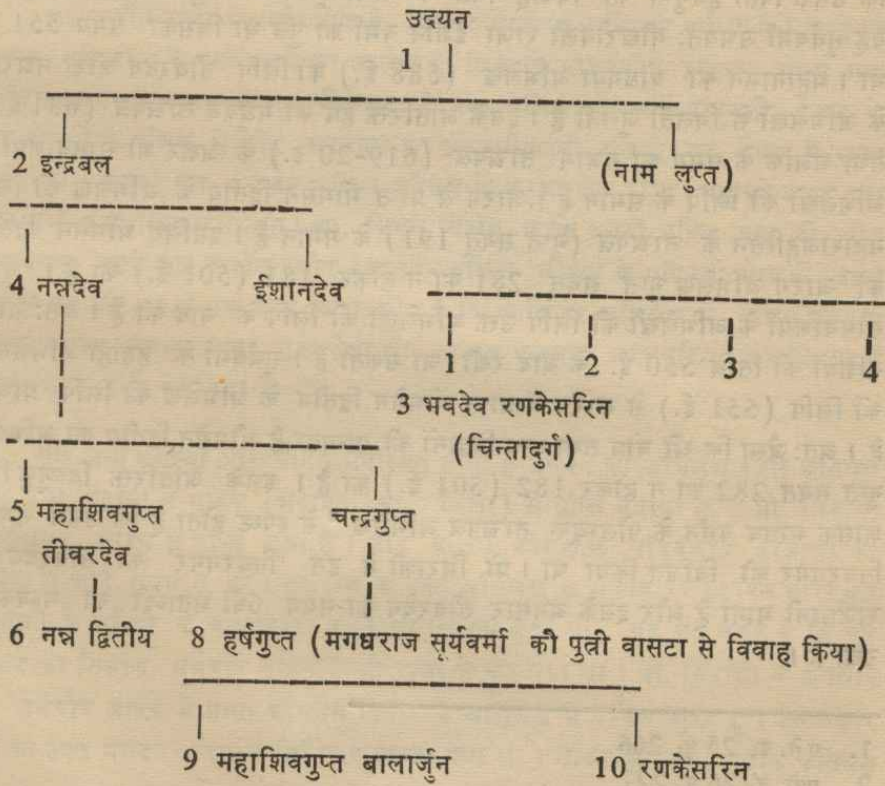
इस प्रकार 6 वीं शताब्दी के मध्यकाल में शरभपुरीय राजाओं का शासक दक्षिण कोशल से समाप्त हो जाने पर पांडु राजाओं का प्रसिद्ध वंश श्रीपुर के रंगमंच पर पदार्पण करता है। पांडव वंश के समस्त अभिलेख श्रीपुर से प्रसारित किये गये थे और उनकी प्राप्ति भी श्रीपुर के समीपवर्ती क्षेत्रों में होती है। इससे स्पष्ट है कि इस वंश के राजाओं ने श्रीपुर को ही पूर्णरूपेण अपनी राजधानी बनाया। वास्तव में पांडुवंशियों का राज्य-काल श्रीपुर का स्वर्णिम काल था और इसी वंश के आधिपत्य में श्रीपुर अपनी उन्नति एवं समृद्धि की चरम सीमा पर पहुँचा। श्रीपुर की स्थापत्यकला, मूर्तिकला साहित्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इन राजाओं के संरक्षण में पूर्ण स्वच्छन्दता एवं समृद्धि के साथ फले-फूले, और उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। जिसके कारण कदाचित् चीनी यात्री ह्वेनसांग भी इस नगर तक आने का लोभसंवरण न कर सका। इस राजवंश के समय श्रीपुर में जिस कला का विकास हुआ उसके कुछ अवशिष्ट उदाहरण आज भी भारतीय कला के अद्वितीय नमूने हैं।

1. एपी. इ. 7 पृ. 105

“प्राप्त सकल कोशल आधिपत्यः”

श्रीपुर में शासन करने वाले इस राजवंश की उत्पत्ति के संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। अपने अभिलेखों में इन राजाओं ने अपने वंश को सोमवंश, चन्द्रवंश या पांडुवंश कहा है। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में आर्यों के दो वंशों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। पहला सूर्य वंश और दूसरा चन्द्रवंश। श्रीपुर के पांडव शासक संभवतः इसी चन्द्रवंश के क्षत्रिय थे। महाभारतकालीन पांडव भी चन्द्रवंशी थे। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि अनुश्रुतियों के अनुसार सिरप् बभ्रुवाहन की राजधानी थी और बभ्रुवाहन अर्जुन का पुत्र होने के कारण पांडुवंशी था। कनिंघम ने ¹ इस तथ्य को लेकर अनुमान किया है कि कदाचित् श्रीपुर के पांडुवंशी शासक बभ्रुवा.ह.न. से संबंधित थे।

इस वंश के राजाओं के अभिलेखों में इस वंश का प्रारंभ उदयन से किया जाता है और इसके अनुसार इस वंश की वंशावली निम्न प्रकार से है:—



पांडुवंशीय राजाओं की तिथि के संबंध में विद्वानों में मदभेद हैं। क्योंकि इन राजाओं के अभिलेखों में भी शरभपुरीय राजाओं के समान तिथि प्राप्त नहीं होती है।

1. आ. सर्वे. रि. भाग 17 पृ. 26

केवल लिपिशास्त्र एवं अन्य बाह्य प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने इनकी तिथि निश्चित करने का प्रयास किया है। कीलहार्न ने एवं भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के भूतपूर्व महानिदेशक श्री अमलानन्द घोष¹ ने लिपिशास्त्र के आधार पर पांडुवंशियों की तिथि आठवीं और नवीं शताब्दी में रखी है। परन्तु प्रो. मिराशी ने निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर इन राजाओं की तिथि ईसा की छठी और सातवीं शताब्दी में निश्चित की है।²

1. लिपिशास्त्र
2. भाषा एवं साहित्य
3. राजनैतिक घटनाओं का सामन्जस्य

महाशिवगुप्त बालार्जुन के श्रीपुर से प्राप्त लक्ष्मणमन्दिर अभिलेख में³ वर्णन है कि उसके पिता हर्षगुप्त का विवाह मगध के राजा सूर्यवर्मा की पुत्री वासटा से हुआ। यह सूर्यवर्मा संभवतः मौखरीवंशी राजा ईशान वर्मा का पुत्र था जिसका समय 551 ई. था। महानामन का बोधगया अभिलेख (588 ई.) की लिपि तीवरदेव और नन्नराज के अभिलेखों से मिलती जुलती है। इसके अतिरिक्त हर्ष का मधुवन ताम्रपत्र (631 ई.)⁴ तथा शशांक के समय का गंजाम ताम्रपत्र (619-20 ई.) के अक्षर भी सोमवशियों के अभिलेखों की लिपि के समान है। आरंग से प्राप्त भीमसेन द्वितीय के अभिलेख की लिपि महाराजहस्तिन के ताम्रपत्र (गुप्त संवत् 191) के समान है। इसलिए भीमसेन द्वितीय का आरंग अभिलेख गुप्त संवत् 281 का न होकर 181 (501 ई.) का है। चूंकि सोमवशियों के अभिलेखों की लिपि उक्त अभिलेखों की लिपि के बाद की है। अतः सोमवंशियों की तिथि 550 ई. के बाद रखी जा सकती है। सूर्यवर्मा के हड़ाहा अभिलेख⁵ की लिपि (551 ई.) से आरंग में प्राप्त भीमसेन द्वितीय के अभिलेख की लिपि प्राचीन है। अतः जैसा कि श्री घोष तथा अन्य विद्वानों की मान्यता है भीमसेन द्वितीय का अभिलेख गुप्त संवत् 282 का न होकर 182 (501 ई.) का है। इसके अतिरिक्त विष्णुकुण्डिन शासक माधव वर्मन के पोलम्बूरु ताम्रपत्र अभिलेख⁶ से स्पष्ट होता है कि उसने समस्त तिवरनगर को विजित किया था। प्रो. मिराशी ने इस 'तिवरनगर' को तीवरदेव की राजधानी माना है और इसके अनुसार तीवरदेव का समय 6वीं शताब्दी का मध्यकाल रखा है।

1. एपी. इ. 25 पृ. 266
2. एपी. इ. 26 पृ. 227
3. एपी. इ. 11 पृ. 184
4. एपी. इ. 7 पृ. 158
5. एपी. इ. 14 पृ. 115
6. ज. आ. हि. रि. सो. 6 पृ. 20

“तिवर नगर भवन गतपरम युवति हृदय जन विहरण रतिः”

इस वंश के अभिलेखों के अनुसार उदयन इस वंश का प्रथम शासक था। कालिंजर में प्राप्त एक अभिलेख में उदयन का उल्लेख है। प्रो. मिराशी के मतानुसार मेकल के पांडुवंशी, जिनका उल्लेख बम्हनी में प्राप्त भरतबल के अभिलेख में आता है, दक्षिण कौशल के पांडुवंशियों के पूर्वज थे। उनके अनुसार इस वंश की परम्परा थी कि पौत्र का नाम पितामह के नाम के समान ही होता था। अतः इसी नियम के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि मेकलवंशी भरतबल जिसका दूसरा नाम इन्द्र था, संभवतः उदयन का पिता था क्योंकि उदयन के पुत्र का नाम भी इन्द्रबल प्राप्त होता है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कोई अन्य प्रत्यक्ष प्रमाण अभी उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी कालिंजर में प्राप्त उदयन के अभिलेख से यह स्पष्ट है कि उदयन का राज्य बांदा जिले तक फैला हुआ था। उदयन का पुत्र इन्द्रबल हुआ, जिसका कोई अभिलेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

शरभपुरीय राजा महासुदेवराज के सिरपुर ताम्रपत्र अभिलेख वर्ष 7 में ¹ इन्द्रबल नामक सुदेवराज के मुख्य मंत्री का उल्लेख है, जिसे कि पांडुवंशीय इन्द्रबल माना गया है। इन अनुमानों से यह निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण कौशल के पांडुवंशी मेकल के पांडुवंशियों के वंशज थे और भरतबल का उत्तराधिकारी पुत्र उदयन मेकल में राज्य करता था। उसका पुत्र इन्द्रबल दक्षिण कौशल के शरभपुरीय राजा महासुदेवराज का मुख्य मंत्री (सर्वाधिकाराधिकृत) था, जिसने विद्रोह करके अपनी शक्ति बढ़ा ली और फलस्वरूप उसके पुत्र नक्षदेव और ईशानदेव दक्षिण कौशल के पश्चिमी भाग में स्वतंत्र शासक बन गये। यहां एक प्रश्न विचारणीय है कि कालिंजर अभिलेख में वर्णित उदयन, जिसका राज्य लगभग बांदा तक फैला था, का पुत्र इन्द्रबल शरभपुरियों के अधिपत्य में उनका मुख्य मंत्री कैसे बना ?

एक अन्य समस्या और सामने उपस्थित होती है नक्षदेव का अभिलेख जिसे कनिष्क तथा अन्य विद्वानों ने मांदक (भद्रावती, बांदा जिला) से प्राप्त बताया है, ² प्रो. मिराशी के अनुसार आरंग से प्राप्त हुआ है। और दक्षिण कौशल के पांडुवंशीय राजाओं का मांदक से कोई संबंध न था। नक्षराज के उक्त अभिलेख में भवदेव रणकेशरिन द्वारा बुद्ध (सुगत) के मन्दिर के जीर्णोद्धार करने का उल्लेख है, ³ और यह भी वर्णन है कि इस मन्दिर का निर्माण सूर्यघोष नामक किसी राजा ने करवाया था। प्रो. मिराशी के अनुसार यह सूर्यघोष आरंग में प्राप्त भीमसेन द्वितीय के अभिलेख में वर्णित 'शूरा' है। इस प्रकार बुद्ध का उक्त मन्दिर आरंग में निर्मित करवाया गया था। मांदक में नहीं। जबकि कनिष्क

1. एपी. इ. 31 पृ. 103

2. आ. सर्वे ई. 9 पृ. 127

3. "ब्रह्मचारी नमो बुद्धो जीर्णमेतत्तदाश्रयात् ।
पुनर्नवत्वं मनयद् बोधिसत्त्वसमः कृती ।"

तथा अन्य विद्वानों के मतानुसार दक्षिण कौशल के पांडुवंश के प्रारम्भिक राजा मांदक में राज्य करते थे और वहाँ से बढ़कर उन्होंने पूर्व दिशा में आकर शरभपुरियों को जीता और श्रीपुर को अपनी राजधानी बनाया। उनके इस अनुमान को इस तथ्य से भी बल मिलता है कि मांदक में बौद्ध अवशेष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। साथ ही साथ 639ई. में चीनी यात्री ने कनिंघम के अनुसार दक्षिण कौशल की जिस राजधानी का भ्रमण किया था वह मांदक चाँदा ही थी।¹ चीनी यात्री ह्वेनसांग ने दक्षिण कौशल की जिस राजधानी का उल्लेख किया है वह मांदक में थी अथवा श्रीपुर में थी यह एक विवादास्पद प्रश्न है, जिस पर अन्यत्र विचार किया जायेगा।

डा. विष्णु सिंह ठाकुर ने अपने अप्रकाशित शोध ग्रन्थ 'HISTORY AND CULTURE OF DAKSHIN KOSAL' में यह व्यक्त किया है कि इन्द्रवल के पुत्र नन्न देव ने अपने राज्य को तीन भागों में विभक्त किया था। पश्चिमी प्रदेश का शासक भवदेव रङ्केसरिन मांदक में राज्य करता था, जिसका कि उल्लेख संभवतः दक्षिण कौशल के राजा के रूप में ह्वेनसांग ने किया है।² उल्लेखनीय है कि डा. विष्णु सिंह ठाकुर ने दक्षिण कौशल के पाण्डुवंशियों की तिथि आठवीं शताब्दी में रखी है। उनके अनुसार नन्न देव का दूसरा भाई ईशान देव उत्तरी भाग (इन्द्रपुर) में राज्य करता था तथा नन्न देव के पुत्र तीवर देव ने पूर्वी भाग (तिवर नगर) पर अपना अधिकार जमाया कनिंघम तथा अन्य विद्वानों ने भी पाण्डुवंशीय राजाओं का संबंध मांदक से बताया है। श्री मो. गा. दीक्षित ने महाशिवगुप्त बालार्जुन के समय के सेनकपाट अभिलेख³ के आधार पर बताया है कि नन्न देव का राज्य वर्धा नदी तक फैला था। इस प्रकार पाण्डुवंशियों का संबंध मांदक से अवश्य था। जबकि प्रो. मिराशी का मत है कि पांडुवंश के प्रारम्भिक शासक मेकल और आरंग के समीप ही राज्य करते थे और वहीं से उन्होंने शरभपुरियों को पराजित कर दक्षिण कौशल पर अधिकार जमाया। नन्न देव के अन्य भाई ईशान देव का एक अभिलेख खरोद स्थित लखनेश्वर के मन्दिर में प्राप्त होता है, जिसे ईशानदेव ने बनवाया था। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि नन्न देव के उक्त विवादास्पद अभिलेख के अतिरिक्त पाण्डुवंशियों का अन्य कोई अभिलेख मांदक से प्राप्त नहीं हुआ। अपितु उनके सारे अभिलेख अधिकतर श्रीपुर, राजिम और आरंग के समीपवर्ती प्रदेश में पाये गये हैं।

नन्नदेव का पुत्र तीवर देव उस वंश का प्रथम राजा है जिसके अभिलेख श्रीपुर से प्रसारित किये गये थे और जिसने कि स्पष्ट रूप से श्रीपुर को अपनी राजधानी बनाई।

1. दि एन्शियन्ट ज्याग्रफी ऑफ इन्डिया पृ. 438
2. ट्रे वेल्स आफ ह्वेन सांग-भाग 4 सैमुयेल बोल पृ. 415
3. एपी, इ. 31 पृ. 32 'वर्दा तट परिहत'

प्रो. मिराशी ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर तीवर देव की तिथि 560 ई० रखी है। जिसका कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। इस नरेश के तीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं। 1-राजिम ताम्रपत्र 2-बलौदा ताम्रपत्र 3-बोंडा ताम्रपत्र।

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि महाप्रवर राज शरभपुरीय वंश का संभवतः अंतिम शासक था जिसने श्रीपुर पर राज्य किया। उसके बड़े भाई सुदेवराज के समय से ही इन्द्रबल, ईशान देव और नन्नदेव ने पश्चिमी प्रदेश में विद्रोह करना प्रारंभ कर दिया था और इस प्रकार नन्नदेव ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। महाप्रवर-राज के समय में शरभपुरीयों की स्थिति और भी दुर्बल हो गई और संभवतः इस अवसर का लाभ उठाकर नन्नदेव के प्रतापी पुत्र तीवर देव ने प्रवरराज को पराजित कर सम्पूर्ण दक्षिण कोशल पर अपना अधिकार जमा लिया और श्रीपुर को अपनी राजधानी बनाया।

तीवर देव के केवल तीन ताम्रपत्र अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जो क्रमशः राजिम¹ बलौदा² और बोंडा³ नामक स्थानों पर मिले हैं। ये तीनों लेख उसकी राजधानी श्रीपुर से प्रसारित किये गये थे। तीवर देव ने अपने बलौदा ताम्रपत्र में स्वयं को समस्त कोशल का स्वामी बताया है।⁴ और प्रो. मिराशी के मतानुसार इस प्रकार की उपाधि उसने दक्षिण कोशल को जीतने के पश्चात् ही धारण की होगी, जहाँ कि महाप्रवर राज और उसके पूर्वज राज कर रहे थे।⁵ प्रो. मिराशी के अनुसार तीवर देव के अभिलेखों की लिपि शरभपुरीय अभिलेखों के बाद की है। तीवरदेव परम भागवत था। उसके अभिलेखों पर गरुड़ की मुहर प्राप्त होती है।

दक्षिण कोशल का आधिपत्य प्राप्त करने एवं श्रीपुर को अपनी राजधानी बना लेने के पश्चात्, प्रतीत होता है कि उसे विष्णु कुण्डिन नरेश माधववर्मन् प्रथम द्वारा पराजय भी सहन करनी पड़ी। माधव वर्मन् प्रथम के 'पोलाम्बूरु' एवं 'ईपुर' ताम्रपत्र के वर्णन के आधार प्रो. मिराशी ने निष्कर्ष निकाला है⁶ कि संभवतः माधव वर्मन् प्रथम ने तीवर देव को पराजित किया। संबंधित वर्णन इस प्रकार है:—

“त्तिवर नगर-भवन-गत-युवति-हृदयानन्दनः” त्तिवर नगर की संभावना तीवर देव की राजधानी से बतलाई जाती है। और शत्रुओं की स्त्रियों को कोई राजा तभी आनन्दित कर सकता है जब उसने उस राजा के नगर पर अधिकार किया हो। परन्तु

1. एपी. इ. 3

2. एपी. इ. 7

3. अप्रकाशित

4. 'प्राप्त सकल कोशल अधिपत्यः' एपी. इ. 7

5. एपी इ. 22 पृ. 17

6. एपी. ई. 22 पृ. 19

प्रतीत होता है कि माधव वर्मन प्रथम की यह विजय अस्थायी थी क्योंकि श्रीपुर में हम पुनः सोमवंशी राजाओं के अभिलेखों को ही पाते हैं। तीवर देव के बलौदा ताम्रपत्र की तिथि उसके राज्य काल का नवाँ वर्ष है। और तीवर देव का समय 560 ई. निश्चित किया जाता है। इस प्रकार उसने संभवतः 560 ई. से 570 ई. तक शासन किया तीवर देव के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र महानन्नराज हुआ। इस राजा का एक ताम्रपत्र ¹ बिलानपुर जिले के अढमार नामक गाँव में प्राप्त हुआ है जो कि श्रीपुर से ही प्रसारित किया गया था। नन्नराज भी अपने पिता के समान परम भगवत था। संभवतः इसका शासन अल्पकालीन था। प्रो. मिराशी के अनुसार महाशिवगुप्त वालार्जुन के सेनकपाट अभिलेख² में जिस नन्न राज का वर्णन है वह तीवर देव का पिता नन्न देव न होकर उसका पुत्र नन्नदेव है। जिसका राज्य एम.जी. दीक्षित के अनुसार वर्धा नदी तक फैला हुआ था। और इसी आधार पर डॉ. एम.जी. दीक्षित ने यह निष्कर्ष निकाला कि मांदक पांडुवंशियों के राज्य में सम्मिलित थी। और नन्न देव के जिस अभिलेख को प्रो. मिराशी आरंग से प्राप्त बताते हैं वह मांदक में ही प्राप्त हुआ था। परन्तु प्रो. मिराशी के मतानुसार सेनकपाट अभिलेख में नन्न देव के राज्य को वर्धा नदी तक फैलाने का जो उल्लेख है वह संभवतः उसकी अस्थाई विजय की ओर इंगित करता है।

नन्न राज³ के किसी पुत्र का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। प्राप्त अभिलेखों में वंशक्रम में उसके पश्चात् तीवर देव के भाई चन्द्रगुप्त का नाम आता है। चन्द्रगुप्त का कोई भी अभिलेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। न ही उसके पुत्र हर्ष गुप्त का कोई अभिलेख अभी तक प्रकाश में आया है। यदि इन दोनों व्यक्तियों ने राज्य किया भी तो संभवतः इनका राज्यकाल अल्पकालीन था। सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर में प्राप्त महाशिवगुप्त वालार्जुन के अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र हर्ष गुप्त का विवाह मगध के राजा सूर्यवर्मा की पुत्री वासटा से किया। यह सूर्यवर्मा मगध के मौखरी राजा ईशान वर्मा का पुत्र था, जिसका 'हड़ाहा अभिलेख' उत्तरप्रदेश के बाराबंकी जिले में तहमील रामसनेही घाट में दरियाबाद कस्बे के समीप स्थित हड़ाहा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। चन्द्रगुप्त और हर्षगुप्त दोनों ही वैष्णव धर्म को मानने वाले थे। हर्षगुप्त की रानी वासटा भी भागवत धर्म को मानने वाली थी और उसने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उसी की स्मृति में एक 'हरि' का ऊँचा मंदिर बनवाया था जो कि लक्ष्मण मंदिर के नाम से सिरपुर में स्थित है और ईंटों की शिल्पकला का अद्वितीय नमूना है।

1. एपी. ई. 31 पृ. 219

2. एपी. ई. 31 पृ. 31

3. एम. बी दीक्षित के सिरपुर उखनन के समय फरवरी 1956ई. में 'नन्नराज' की एक सील प्राप्त हुई थी जो कि लाल बलुये पत्थर की थी परन्तु उनके मतानुसार यह निश्चित नहीं है कि यह सील किस 'नन्नराज' की थी (एपी. ई. 31 पृ. 32 पाद टिप्पणी)

मगध के मौखरी वंश से यह वैवाहिक संबंध पाण्डुवंशियों की बढ़ती हुई समृद्धि एवं उनकी शक्ति का परिचायक है। तन्त्र राज, चन्द्र गुप्त और हर्ष गुप्त के सम्पूर्ण शासन काल की अवधि 25 वर्ष मानी गई है और इस प्रकार 595 ई. के समीप पांडुवंश का सबसे अधिक प्रतापी नरेश महाशिव गुप्त बालार्जुन दक्षिण कोशल का अधिपति हुआ। जिसका राज्य काल श्रीपुर के इतिहास का स्वर्ण काल था। वास्तव में श्रीपुर का सारा वैभव एवं सारा स्वरूप महाशिवगुप्त बालार्जुन के राज्य काल में अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था। और जितने भी मंदिर, मूर्तियाँ अभिलेख, विहार तथा अन्य महत्वपूर्ण पुरावशेष सिरपुर से प्राप्त होते हैं उनमें से अधिकांश इसी राजा के समय से ही संबंधित हैं।

महाशिवगुप्त बचपन से ही धनुर्विद्या में निष्णात होने के कारण बालार्जुन की उपाधि से विभूषित था। उसके समय के तीन ताम्रपत्र अभिलेख तथा लगभग आधे दर्जन से अधिक प्रस्तर अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनके द्वारा हमें इस राजा के व्यक्तित्व एवं उसके राज्य काल के सबन्ध में सूचनाएं प्राप्त होती हैं। महाशिवगुप्त और बालार्जुन के राज काल के निम्न लिखित अभिलेख प्रान्त होते हैं :-

- 1 - सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर अभिलेख ¹
- 2 - महाशिव गुप्त बालार्जुन के समय का सिरपुर अभिलेख (आनन्द प्रभुकुटी बिहार से प्राप्त) ²
- 3 - सुरंग टीले से प्राप्त अभिलेख ³
- 4 - गंधेश्वर मंदिर के शिलालेख (जिनकी संख्या कनिंघम ने 6 दी है) ⁴
- 5 - गंधेश्वर मंदिर का नदी द्वार अभिलेख ⁵
- 6 - सेनकपाट अभिलेख (एपी. ई. 31 पृ. 31)
- 7 - बारदूला ताम्र पत्र (एपी. इ. 27 पृ. 289)
- 8 - लोघिया ताम्र पत्र (एपी. इ. 27 पृ. 319)
- 9 - मल्लार ताम्र पत्र (उत्कीर्ण लेख, पृ. 44)
- 10 - बोंडा ताम्र पत्र (अप्रकाशित)

1. एपी. इ. 11, पृ. 182

2. एपी. इ. 31 पृ. 197

3. आ. सर्वे. रि. 17 पृ. 27 (कनिंघम)

4. आ. सर्वे. रि. 17 पृ. 27 (कनिंघम)

5. इन्सक्रिप्शन्स इन सी. पी एन्ड बरार (डा. हीरालाल) पृ. 111

उपरोक्त अभिलेखों के अतिरिक्त सिरपुर से दो अन्य अभिलेख प्राप्त हुए हैं। एक बुद्ध घोष का अभिलेख है, ¹ जो सिरपुर के निकटवर्ती जंगल से प्राप्त हुआ है तथा दूसरा एक अत्यन्त घिसा हुआ लेख ² है, यह निश्चित नहीं है कि उक्त दोनों अभिलेख किस राजा के काल से संबन्धित हैं।

महाशिवगुप्त बालार्जुन के समय के उक्त अभिलेखों के वर्णनों से ज्ञात होता है कि वह पांडुवंशीय राजा हर्षगुप्त और रानी वासुदेवा का पुत्र था। महाशिव गुप्त बालार्जुन शैव धर्म का उपासक था, जबकि उसके पूर्वज वैष्णव धर्म को मानते थे। उसके समस्त अभिलेखों पर नन्दौ और त्रिशूल की आकृति प्राप्त होती है। तथा अभिलेखों की रचना का प्रारम्भ शिव वंदना से होता है। उसका नाम भी शैव धर्म का द्योतक है। परन्तु इतना होते हुए भी वह पूर्ण रूपेण धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक था। उसके मल्लार ताम्र पत्र में वर्णन है कि उसने कैलासपुर नामक ग्राम एक विहार में रहने वाले आर्यभिक्षु संघ को मामा भास्कर वर्मा की विज्ञप्ति और ताम्र शासन से दान में दिया था। आनन्द प्रभु कुटी विहार से प्राप्त अभिलेख से भी यह स्पष्ट है कि उसके राज्य काल में यह बौद्ध विहार बनवाया गया था। सिरपुर स्थित लक्ष्मण मंदिर भी उसी के राज्य काल में निर्मित हुआ था। इसके अतिरिक्त उसके राज्य काल के अन्य अभिलेख भी उसकी धार्मिक सहिष्णुता के समर्थक हैं। उसके समय में सिरपुर की सर्वांगीण उन्नति हुई अतः अवश्यमेव वह पांडुवंश का सबसे अधिक शक्तिशाली एवं प्रसिद्ध राजा था।

श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय के अनुसार महाशिव गुप्त के पिता हर्षगुप्त का साम्राज्य पूर्व समुद्र तक फैला था, क्योंकि सिरपुर के लक्ष्मण मंदिर अभिलेख में हर्षगुप्त को प्राक् परमेश्वर कहा गया है और इस प्रकार हर्ष गुप्त प्राक् कोशल का स्वामी था, जिसमें संभवतः दक्षिण कोशल, पूर्व कोशल, तोषल, उत्कल और ओड्र सम्मिलित थे और जिसकी सीमाएं पूर्व समुद्र तक विस्तृत थीं। * इस प्रकार महाशिवगुप्त ने अवश्यमेव अपने पिता के इस विस्तीर्ण राज्य को प्राप्त किया होगा। उसके अभिलेख भी सारंगगढ़ के आस-पास तक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार श्री लोचन प्रसाद पाण्डेय की उक्त मान्यता के अनुसार महाशिव गुप्त का साम्राज्य पूर्व समुद्र तक फैला था। उसके लोघिया ताम्र पत्र में उसे त्रिकलिगाधिपति कहा गया है।

1. उत्कीर्ण लेख पृ. 157

2. वही पृ. 157

* बिलहरी अभिलेख (डा. हीरालाल-इन्सक्रिप्शन्स इन सी. पी एन्ड बरार पृ. 24) के अनुसार कलचुरी राजा ने कोशल के राजा से 'पाली' छीन ली थी। पं. लोचनप्रसाद पाण्डेय ने उड़ीसा में समुद्र तट से लगभग 13 कि. मी. दूर स्थित 'पालिया' स्थान को उक्त अभिलेख का 'पाली' बताने का प्रयास किया है।

महाशिव गुप्त का लोधिया ताम्र पत्र उसके राज्य के 57 वें वर्ष में प्रसारित किया गया था अतः अनुमानतः उसका शासन काल लगभग 60 वर्ष था। इस प्रकार 6 वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से लेकर 7 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रारम्भ तक इस नृपति ने दीर्घकाल तक सिरपुर पर शासन किया। श्रीपुर पर राज्य करने वाले समस्त राजाओं में महाशिव गुप्त का राज्य काल दीर्घतम काल है और कदाचित् यही सबसे बड़ा कारण है कि आज सिरपुर के गत वैभव की गाथा कहने वाले जो भी अवशेष हमें वहाँ प्राप्त होते हैं उनमें अधिकांश अस्फुट स्वर से महाशिव गुप्त बालार्जुन की कीर्ति का ही गान करते प्रतीत होते हैं। महाशिव गुप्त बालार्जुन का एक भाई भी था जिसका नाम 'रणकेशरिन' था। परन्तु उसने राज्य किया अथवा नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के पश्चात् पतन होना प्रकृति का नियम है। कदाचित् बालार्जुन के पश्चात् यही दशा सिरपुर की भी हुई। क्योंकि बालार्जुन के पश्चात् संभवतः सिरपुर को न तो राजधानी होने का गौरव प्राप्त हो सका और न अपने गत वैभव को वह पुनः प्राप्त कर सका। महाशिवगुप्त के पश्चात् सिरपुर में उसका उत्तराधिकारी कौन हुआ यह ज्ञात नहीं है। न ही उसके किसी पुत्र का उल्लेख कहीं प्राप्त होता है, क्योंकि महाशिवगुप्त के पश्चात् इस वंश का कोई अभिलेख सिरपुर में प्राप्त नहीं होता है। उड़ीसा में विनीतपुर और ययातिनगर में पाये जाने वाले सोमवंशी नरेशों के अभिलेखों के आधार पर कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि संभवतः उड़ीसा के ये सोमवंशी शासक श्रीपुर के पांडुवंशियों के ही उत्तराधिकारी थे और संभवतः किसी ब्राह्म शक्ति के आक्रमण से पराभूत होकर ये लोग सिरपुर छोड़कर उड़ीसा की ओर चले गये। परन्तु उड़ीसा के इन राजाओं का संबंध श्रीपुर के पांडु वंशियों से जोड़ने के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है।

डा. सी.सी. सरकार¹ के मतानुसार बालार्जुन स्वयं अथवा उसका उत्तराधिकारी संभवतः चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय द्वारा पराजित किया गया। पुलकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति में वर्णन है कि वह समस्त दक्षिण पथ का स्वामी था और उसका राज्य नर्मदा तक विस्तीर्ण था। इसी प्रकार बिलहरी अभिलेख में वर्णन है कि कल्चुरी राजा कोक्कल प्रथम के पुत्र 'मुग्धतुंग' ने कोशल नरेश से पाली छीन ली² नल वंश के राजा विलासतुंग का राजिम³ में प्राप्त अभिलेख भी इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि उसके राज्य में कोशल (श्रीपुर) सम्मिलित था। रतनपुर से प्राप्त कल्चुरी राजा

1. वाकाटक गुप्त एज, पृ. 84

2. का. इ. इ. 4, पृ. 204

3. एपी. इ. 9, पृ. 54

जाजलदेव प्रथम के अभिलेख से ज्ञात होता है कि कलचुरियों ने तुम्माण को अपनी राजधानी बनाया और दक्षिण कोशल उनके आधिपत्य में आ गया। सिरपुर के उत्खनन में श्री एम.जी. दीक्षित को 106 कलचुरी कालीन सिक्के प्राप्त हुए। इसके साथ भवनों के अवशेष जो कि दूसरे काल से संबंधित हैं, कलचुरीकालीन हैं।

उक्त समस्त प्रमाणों से निष्कर्ष निकलता है कि संभवतः महाशिवगुप्त बालार्जुन के पश्चात् समीपवर्ती बाह्य शक्तियों ने दक्षिण कोशल पर आक्रमण किया और 7 वीं शताब्दी से लेकर 10 वीं शताब्दी तक श्रीपुर की भाग्य लक्ष्मी अस्थिर रूप से विभिन्न राजाओं के आश्रय में घूमती रही। महाशिवगुप्त के पश्चात् श्रीपुर राजधानी नहीं रही, फिर भी वहाँ प्राप्त अवशेषों से यह स्पष्ट है कि श्रीपुर कलचुरियों के काल में एक महत्वपूर्ण स्थल था। दशवीं शताब्दी में तुम्माण में (बिलासपुर जिला) में त्रिपुरी के कलचुरी शासकों की एक शाखा ने आकर कलिंग राज के आधिपत्य में अपनी राजधानी बनाया।¹ इसके पश्चात् श्रीपुर कलचुरियों के राज्य में सम्मिलित रह कर अपने वैभव को प्रकीर्ण करता रहा।

सिरपुर उत्खनन से प्राप्त अधिकतर अवशेष 12 वीं शताब्दी तक आते हैं। इस प्रमाण के अनुसार 12 वीं शताब्दी तक श्रीपुर वैभवपूर्ण स्थिति में रहा। उसके पश्चात् का काल श्रीपुर के लिये धीरे धीरे अवनति की ओर अग्रसर होता रहा। इसका सबसे प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि कलचुरियों ने अपने प्रमुख केन्द्र तुम्माण रतनपुर और रायपुर में स्थित किये और इस प्रकार श्रीपुर का महत्व दिनों दिन कम होता रहा। कलचुरियों के पश्चात् या गोंड शासकों एवं नागपुर के भोसलों का शासन यहाँ पर रहा। गोंडकालीन अवशेष भी सिरपुर उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। भोसलों के काल में सिरपुर स्थित कुछ मंदिरों का जीर्णोद्धार हुआ। तत्पश्चात् दिनों दिन इसका वैभव समाप्त होता रहा। और सन् 1872-73 में जब बेगलर² ने श्रीपुर का भ्रमण किया उस समय श्रीपुर पूर्ण रूपेण खंडहरों के नगर के रूप में परिवर्तित हो चुका था। केवल कुछ मन्दिर जिनका जीर्णोद्धार अथवा निर्माण भोसलों के काल में हुआ था, अवशिष्ट थे। बेगलर ने अपनी रिपोर्ट में सिरपुर के भग्नावशेषों का विस्तृत वर्णन किया है। इसके पश्चात् सर एलेक्जेंडर कनिंघम³ ने 1881-82 तथा कंजिन्स ने 1903-4 में सिरपुर का भ्रमण किया और रिपोर्टें प्रकाशित करवाईं। इसके पश्चात् पुरातत्व विभाग की ओर से सिरपुर स्थित स्मारकों का कुछ संरक्षण कार्य पुरातत्व विभाग भारत शासन की ओर से कराया गया। 1952 से लेकर 1956 तक श्री एम. जी. दीक्षित ने सिरपुर के कुछ महत्वपूर्ण स्थलों का उत्खनन करवाया। परन्तु उसकी रिपोर्ट अभी तक अप्रकाशित है।

1. उत्कीर्ण लेख, पृ. 72

2. आ. स. रि. भाग 17 पृ. 86-193

3. वही, भाग 17, पृ. 27

अध्याय 4

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

सिरपुर के भग्नावशेष दक्षिण कोशल की संस्कृति का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव में दक्षिण कोशल का राजनैतिक केन्द्र बिन्दु होने के साथ साथ कला और साहित्य के क्षेत्र में भी सिरपुर लगभग समस्त दक्षिण कोशल के लिये प्रेरणा का केन्द्र बिन्दु था। पांडुवंशी नरेशों की छत्र छाया में और विशेषकर महाशिव गुप्त बालार्जुन के राजत्व काल में श्रीपुर में उस कला का जन्म एवं विकास हुआ जो कि तत्कालीन समस्त समीप-वर्ती क्षेत्र जैसे राजिम, आरंग, पुजारीपाली और खरोद की कला को विकसित करने में पूर्ण सहायक रही। पांडुवंशी नरेशों की धर्म सहिष्णुता एवं उनकी सर्जनात्मक अभिरुचि के उदाहरण स्वरूप सिरपुर की ताम्र-प्रतिमाएं एवं वहाँ का लक्ष्मण मन्दिर आज भी अपने क्षेत्र में अद्वितीय कलाकृति के उत्कृष्ट नमूने के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

नगर निर्माण एवं स्थापत्य कला:-

अनुश्रुतियों के अनुसार सिरपुर महाभारतकालीन अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन की राजधानी थी और इस नगर का नाम मणिपुर अथवा चित्रांगदपुर था। आज भी श्रीपुर के भग्नावशेष स्थानीय व्यक्तियों द्वारा बभ्रुवाहन से संबंधित बताये जाते हैं।

बेगलर के अनुसार ¹ सिरपुर का प्राचीन नगर दक्षिण में 'छिरका ताल' तक एवं उत्तर में 'खमरताई' तक फैला हुआ बताया जाता था। दोनों के बीच की दूरी लगभग 5 मील है। इस प्रकार प्राचीन नगर महानदी के किनारे पाँच मील की लम्बाई में फैला था। जबकि उसकी चौड़ाई केवल 1 मील थी। फिर भी बेगलर के अनुसार श्रीपुर के मुख्य भग्नावशेष केवल 1 मील के घेरे में ही प्राप्त होते हैं। अनुश्रुति के अनुसार सिरपुर 5 कोस (10 मील) के घेरे में बसा था। सर एलेक्जेंडर कनिंघम ने सिरपुर की दक्षिणी सीमा 'खिरसाली' तथा 'अचानकपुर' तक बताई है। दोनों गंधेश्वर मन्दिर से 6 मील की दूरी पर स्थित हैं। कनिंघम के अनुसार प्राचीन सिरपुर महानदी एवं 'बरदेव' तथा 'नैनी' नालों से बनने वाले त्रिकोण के बीच स्थित था, जिसका घेरा लगभग 21 मील था।

1. आ. सर्वे. रि. भाग 7 पृ. 186-193

हवेनसांग ने भी अपनी दक्षिण कोशल की यात्रा के विवरण में ¹ लिखा है कि राजधानी लगभग 40 ली के घेरे में है। कनिंघम ने ² एक ली लगभग 6 मील के बराबर माना है। इस प्रकार यदि हवेनसांग द्वारा वर्णित दक्षिण कोशल की राजधानी सिरपुर ही है तो हवेनसांग के अनुसार इसका घेरा लगभग 7 मील में था। फिर भी सिरपुर के वर्तमान मुख्य भग्नावशेष लगभग 1 मील की लम्बाई और 1/2 मील की चौड़ाई में प्राप्त होते हैं।

1953-54 में सागर विश्वविद्यालय एवं 1954-55 व 1955-56 में मध्य-प्रदेश शासन पुरातत्व विभाग की ओर से श्री एम.जी. दीक्षित ने सिरपुर के निम्नलिखित मुख्य-मुख्य स्थलों पर उत्खनन कार्य करवाया था।

- 1- शिव मन्दिर 1-यह लक्ष्मण मन्दिर के उत्तर में लगभग 100 मीटर की दूरी पर स्थित है।
- 2- प्राचीन नगर स्थल-यह गन्धेश्वर मन्दिर के उत्तर पूर्व में लगभग 50 मीटर की दूरी पर स्थित है।
- 3- आनन्द प्रभुकुटी विहार (देखिये चित्र फ. 3)
- 4- स्वस्तिक विहार (देखिये चित्र फ. 4)
- 5- विहार 1 से 5 (देखिये रेखाचित्र 2)
- 6- लघु दुर्ग (देखिये रेखाचित्र 6)

उपरोक्त स्थलों के अतिरिक्त अन्य कई स्थलों पर भी डा. एम. जी. दीक्षित ने परीक्षा खात (TRIAL TRENCH) लगवाये थे परन्तु वहाँ कोई विशेष उपलब्धि न हो सकी।

प्राचीन नगर स्थल :—डा. एम.जी. दीक्षित के अनुसार यहाँ हर प्राचीन नगर की स्थिति थी। उन्होंने यहाँ पर 43 रहने के कमरों को खोदकर भूमि से बाहर निकाला।³ उनके अनुसार इस नगर स्थल के उत्खनन में उन्हें तीन कालों की बस्ती के चिन्ह मिले। प्राचीन तम काल पाँचवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश का काल था, क्योंकि इस स्तर पर उन्हें शरभपुरीय राजा प्रसन्नमात्र का एक भग्न स्वर्ण सिक्का प्राप्त हुआ।

द्वितीयकाल का समय सातवीं शताब्दी का है। इस काल में भवन निर्माण की प्रक्रिया तीव्र गति पर थी; क्योंकि इस स्तर पर उन्हें कई ईंट एवं प्रस्तर निर्मित भवन प्राप्त हुए। यह उल्लेखनीय है कि अभिलेखीय सामग्री भी एस तथ्य का पूर्ण समर्थन करती

1. ट्रेवेल्स ऑफ हवेन सांग भाग 4-सेमुएल बोल, पृ. 414

2. एग्जिक्युटिव ज्याग्रफी ऑफ इन्डिया-पृ. 438

3. इन्डियन आर्कियालाजी 1955-56 पृ. 26

है। 7वीं शताब्दी का समय महाशिवगुप्त बालार्जुन का समय था। अभिलेखों के अनुसार सिरपुर के अधिकांश मन्दिरों एवं भवनों का निर्माण उसी के काल में हुआ।¹

तृतीयकाल को डा० एम० जी० दीक्षित ने 11 वीं शताब्दी का समय निरूपित किया है क्योंकि इस स्तर पर उन्हें रत्नपुर में राज्य करने वाले कल्चुरी नरेश रत्नदेव के 106 तांबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इस युग के भवन पूर्व युगीन भवनों की सामग्री से बने हुए प्राप्त हुए हैं। इस युग के 43 कमरे प्रकाश में लाये गये एवं बहुरंगी कौच की चूड़ियां भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई। डा० दीक्षित का अनुमान था कि संभवतः सिरपुर में उनका स्थानीय निर्माण होता था।

लघु दुर्ग प्राचीन वस्तु के लिये यह शब्द अनुपयुक्त :- सिरपुर के पश्चिमी छोर पर स्थित गन्धेश्वर मन्दिर के उत्तर-पूर्व और लगभग 50 मीटर की दूरी पर उत्खनन करने के पश्चात् प्राप्त प्रमाणों के आधार पर डा० एम० जी० दीक्षित ने इसे लघु दुर्ग की संज्ञा दी है। यहाँ पर सीमित उत्खनन करवाया गया। यह स्थल जिसकी नाप 250×220 गज है। चारों ओर से प्रस्तर निर्मित 16 फीट चौड़ी और 12 फीट ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। परन्तु ऊपरी सतहों से बहुरंगी चूड़ियों के प्राप्त होने से डा० दीक्षित का अनुमान है कि संभवतः कल्चुरी काल अथवा उसके पश्चात् के काल से संबंधित है।²

स्वस्तिक विहार:- अध्याय तीन में बताया गया है पांडुवंशी राजा महाशिवगुप्त बालार्जुन एक अत्यन्त ही धर्म सहिष्णु राजा था और सभी धर्मों का सम्मान करता था। उसके राज्य में सभी धर्म निर्वाध गति से फल-फूल रहे थे। डा० एम० जी० दीक्षित को 1955-56 के उत्खनन में एक विशाल बौद्ध विहार प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने स्वस्तिक विहार की संज्ञा दी है, (चित्र फलक 4), क्योंकि इस विहार की योजना स्वस्तिक चिन्ह के समान है। यह विहार आधुनिक सिरपुर से दक्षिण दिशा में लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इसके मध्य में एक खुला आँगन है जिसके चारों ओर तीन तीन कोठरियों की पंक्ति के मध्यवर्ती कमरे में 8 फीट 6 इंच की एक विशाल बुद्ध प्रतिमा

1. यह नगर स्थल गन्धेश्वर मन्दिर से उत्तर पूर्व लगभग 50 मीटर की दूरी पर देवी के मन्दिर के समीप से प्रारंभ होता प्रतीत होता है। यद्यपि यहाँ पर डा. एम. जी. दीक्षित ने केवल सीमित क्षेत्र का उत्खनन करवाया था परन्तु भग्नावशेषों के चिन्ह पर्याप्त विस्तीर्ण क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। उत्तर में लक्ष्मण मन्दिर, पूर्व में रायकेरा जलाशय और पश्चिम में नदी पर्यन्त संभवतः इसके भग्नावशेष फैले हुए हैं जो कि डा. एम. जी. दीक्षित के इस मत को पुष्ट करता है कि यही सिरपुर के प्राचीन नगर के अवशेषों का स्थल है।

2. इन्डियन आर्कियालाजी 1955-56 पृ. 27

अंडाकार प्रभा मंडल के सहित भूमिस्पर्श मुद्रा में प्रतिष्ठापित है, जिसके आधार पर दाहिने पार्श्व में पद्मपाणि की मूर्ति है। डा० दीक्षित के अनुसार प्रांगण के दक्षिण-पश्चिम कोने में लाल बलुये पत्थर की एक हारीति की प्रतिमा थी।

अन्य बौद्ध विहार स्थल:—वर्ष 1954-55 व 55-56 के उत्खनन में स्वस्तिक विहार के उत्तर में लगभग 30 मीटर की दूरी पर डा. एम.जी. दीक्षित को पाँच विहार प्राप्त हुए, जिनके मध्य में एक विशाल कमरा होता था। जिसके चारों ओर कोठरियाँ होती थीं साथ ही एक मूर्ति मध्यवर्ती कक्ष में स्थापना के लिये होती थी। साधारणतया प्रस्तरधरातलयुक्त प्रांगण भी होता था। मध्यवर्ती विशाल कमरे में अथवा प्रांगण में पानी से भरा हुआ एक बड़ा घड़ा रखा रहता था। इन विहारों में से एक विहार में विशाल मात्ता में काँच एवं सीप की चूड़ियाँ प्राप्त हुईं जिससे डा. एम.जी. दीक्षित ने यह निष्कर्ष निकाला कि संभवतः यह भिक्षुणियों का विहार था। एक धरातल के नीचे के कमरे के आधार में एक छोटा स्तूप और एक सोने का मुलम्मा चढ़ा हुआ वज्र भी प्राप्त हुआ। प्रांगण में बौद्ध लेख युक्त मुहरें भी प्राप्त हुईं। एक विहार के मध्यवर्ती विशाल कमरे में बुद्ध की विशाल प्रतिमा रखने हेतु ईंटों से बना हुआ सीढ़ियोंयुक्त चबूतरा था, जिस पर अन्य सहायक देवताओं की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठापित की जाती थीं। उनमें से कुछ जैसे अवलोकितेश्वर, तारा, मञ्जुश्री इत्यादि डा. एम.जी. दीक्षित को प्राप्त हुईं, जिन पर कि 7वीं-8वीं शताब्दों की लिपि में बौद्ध मंत्र उत्कीर्ण हैं।

आनन्द प्रभुकुटी विहार:—वर्ष 1954-55 के उत्खनन में डा. दीक्षित को लक्ष्मण मन्दिर के दक्षिण में लगभग 1 मील की दूरी पर दो विशाल बौद्ध विहार संयुक्त रूप में मिले, जिनमें से एक को उन्होंने मुख्य मन्दिर और दूसरे को निचला विहार की संज्ञा दी।¹

मुख्य मन्दिर (चित्र फलक 3) में मध्यवर्ती आंगन के उत्तरी बरामदे में उत्खनन के समय एक अभिलेख प्राप्त हुआ,² जिसमें आनन्द प्रभु नामक किसी भिक्षु द्वारा बौद्ध विहार बनवाने का उल्लेख है। अतः इसी कारण से इस मुख्य मन्दिर को आनन्द प्रभु कुटी विहार भी कहा जाता है। यह विहार सिरपुर से सेन कपाट की ओर जाने वाले प्राचीन मार्ग के किनारे लगभग 100 मीटर की दूरी पर स्थित है। उक्त अभिलेख से स्पष्ट है कि यह विहार महाशिव गुप्त बालार्जुन के राज्य काल में निर्मित किया गया था।

1. निचला विहार संभवतः उसे इसीलिए कहा गया कि उसका धरातल मुख्य मन्दिर से कुछ नीचा है। यह विहार समकोणीय चतुर्भुज की योजना में बना था, जिसके मध्य में विशाल पक्के धरातल का प्रांगण था तथा चारों ओर कोठरियों की क्रमहीन पंक्तियाँ थीं।
2. महाशिवगुप्त के समय का सिरपुर अभिलेख। एपी.इ. 31 पृ. 197

मुख्य मन्दिर की योजना समकोण चतुर्भुज जैसी थी, जिसमें कि उत्तर की ओर छज्जे के आगे एक अत्यन्त नक्काशी युक्त तोरण द्वार था जिसके दोनों ओर लम्बी आकृति के द्वार पाल एवं छज्जे की पार्श्व-भित्तियों पर अनेक यक्षों की मूर्तियाँ थीं। इस मन्दिर में एक विहार तथा मन्दिर के कुछ स्थापत्य लक्षणों का सुन्दर सामञ्जस्य प्रतिलक्षित होता है। सोलह स्थूल प्रस्तर स्तंभों पर आधारित सभा मंडप, छज्जा तथा प्रतिमा मन्दिर से युक्त इस विहार में एक मन्दिर के आवश्यक लक्षणों का समावेश था जबकि मध्यवर्ती पंक्तियों की योजना में यह पूर्णरूपेण प्रचलित विहार योजना का अनुगामी है। पृष्ठवर्ती कोठरियों की पंक्ति की मध्यवर्ती कोठरी में भूमिस्पर्श मुद्रा में 6-1/2 फीट ऊँची एक विशालकाय बुद्ध प्रतिमा सिंहासन पर विराजमान है। (चित्र फलक 5) इस प्रतिमा के दक्षिण पार्श्व में पद्मपाणि की पूर्ण आकार की प्रतिमा है। देव मन्दिर के द्वार का दक्षिण पार्श्व गंगा की प्रतिमा से अलंकृत था। वाम पार्श्व में संभवतः यमुना की मूर्ति रही होगी। डा. एम.जी. दीक्षित के मतानुसार¹ लगभग 200 वर्ष तक यह विहार बौद्धों के उपयोग में रहा उसके पश्चात् शैव मतावलम्बियों के द्वारा बौद्धों को इन विहारों से निर्वासित कर दिया गया। इन शैवों ने विहारों में बहुत से सुधार और परिवर्तन भी किये और ग्यारहवीं शताब्दी में विहार पूर्ण रूपेण परिव्यक्त कर दिया गया।

डा. एम.जी. दीक्षित का यह मत इस तर्क पर आधारित है कि उन्हें इन विहारों में गणेश, महिषासुरमर्दिनी और शिव-पार्वती आदि के मूर्ति पट्ट उत्तरवर्ती स्तरों से प्राप्त हुए हैं। डा. एस.एल. कटारे डा. दीक्षित की इस मान्यता से सहमत नहीं हैं।² डा. कटारे के मतानुसार सिरपुर में शैव, बौद्ध, जैन एवं वैष्णव धर्मों का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व था। इसके अतिरिक्त डा. एम. जी. दीक्षित का उत्खनन कार्य केवल एक सीमित क्षेत्र में ही हुआ है। यदि शैवों ने इन बौद्ध विहारों पर अपना अधिकार किया तो उन्होंने इन विशाल बौद्ध प्रतिमाओं को हटाकर शिवलिंग अथवा शिवप्रतिमा को प्रतिष्ठापित क्यों नहीं किया? वे केवल कुछ गणेश, महिषासुर मर्दिनी एवं शिव-पार्वती के छोटे छोटे मूर्ति पट्टों मात्र से ही संतुष्ट क्यों रह गये? डा. कटारे के मतानुसार मुख्य मन्दिर में स्थित बौद्ध की विशाल प्रतिमा के द्वार पर गंगा की उपस्थिति भी डा. दीक्षित नहीं समझा पाये हैं। जबकि डा. दीक्षित का मत है कि चूंकि बुद्ध को ब्राह्मण धर्म में भी एक देवता के रूप में माना गया है, इसीलिए शैवों ने बुद्ध की प्रतिमा को नहीं हटाया, क्योंकि बुद्ध को भी विष्णु के दशावतारों में से एक माना गया है।³

शिव मन्दिर:- 1954 में डा. एम.जी. दीक्षित ने लक्ष्मण मन्दिर के उत्तर में लगभग 100 मीटर की दूरी पर स्थित एक टीले का उत्खनन करवाया, जिसमें उन्हें

1. इन्डियन आर्कियालाजी 1954-55 पृ. 24
2. इन्डियन हि. का. 35 न 1 पृ. 3
3. श्री शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. 191

पञ्चायतन शाखा का एक शिव मन्दिर मिला । (रेखाचित्र 5) यह 8-10 फीट ऊँचे प्रस्तर निर्मित आधार पर बना हुआ था जिसके सम्मुख ईंटों का कोठरी नुमा ढाँचा था । पश्चिम दिशा में सामने 4-1/2 फीट ऊँचा एक शिवालिंग स्थापित है । और पश्चिम दिशा की ओर शिव की कुछ छोटी मूर्तियाँ हैं । प्रत्येक पार्श्व पर दो दो मूर्तियाँ हैं । जिससे डा. दीक्षित ने यह निष्कर्ष निकाला कि पञ्चायतन शाखा प्रतिलोम स्वरूप की थी । सिरपुर स्थित जिन स्मारकों का उत्खनन डा. एम. जी. दीक्षित ने करवाया उनमें से बौद्ध-विहार विशेष महत्वपूर्ण हैं । डा. एम. जी. दीक्षित का मत है कि इन बौद्ध विहारों की स्थापत्य शैली विशेषकर उनकी योजना एवं उनमें गुप्त कमरों की व्यवस्था तथा छज्जे की ऊपरी मंजिल तक जाने की सीढ़ियाँ कुछ स्थापत्य विशेषताएँ हैं जो कि विहार प्रान्त में स्थित नालन्दा के विहारों में समान रूप से पाई जाती हैं,¹ और प्रतीत होता है कि सिरपुर की स्थापत्य कला ने उनका अनुगमन किया है । अभिलेख सामग्री से ज्ञात होता है कि पाण्डव शासकों का संबंध मगध से था और संभव है वहाँ के कलाकारों की कला सिरपुर तक इसी माध्यम से आ गई हो ।

डा. एम. जी. दीक्षित ने सिरपुर में केवल कुछ चुने हुए सीमित स्थलों पर ही उत्खनन कार्य करवाया था जबकि सिरपुर में विस्तीर्ण भग्नावशेषों एवं टीलों की संख्या अगणित है । और एक विशेष उल्लेखनीय भाग सिरपुर के निकट के चार मील के विस्तीर्ण भाग में फैले हुए बहु संख्यक तालाब हैं । इनमें से प्रत्येक के तट पर छोटे छोटे भग्नावशेष दिखाई पड़ते हैं । कहा जाता है कि इनकी संख्या सवा लाख से अधिक है । आधुनिक ग्राम की दक्षिण दिशा में क्रमहीन विस्तीर्ण टीले समीपवर्ती धरातल से लगभग 8-10 फीट ऊँचे हैं और अपने अंचल में सिरपुर का विगत वैभव छिपाये हैं ।

आधुनिक सिरपुर से सेनकपाट को जाने वाले मार्ग का यदि पुरातात्विक दृष्टि से अनुसरण किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः यह मार्ग प्राचीन श्रीपुर का प्रधान राजमार्ग रहा होगा । (रेखा चित्र 2) सिरपुर से लेकर पर्याप्त दूरी तक इस मार्ग के दोनों ओर एक क्रम में भग्नावशेषों के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं । उल्लेखनीय है कि इस मार्ग का धरातल दोनों पार्श्व के धरातलों से अपेक्षाकृत काफी नीचा है । इस मार्ग के पूर्वी किनारे पर ही आनन्द प्रभुकुटी विहार, एवं शिव मन्दिर २ स्थित थे । सेनकपाट ग्राम जो कि सिरपुर से लगभग दो मील दक्षिण में महानदी तटपर स्थित है श्रीपुर के समान ही प्राचीन प्रतीत होता है क्योंकि वहाँ के अवशेष भी प्राचीन हैं और वहाँ पर बालार्जुन का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ है ।² इसके अतिरिक्त इस गांव का नाम भी सम्भवतः 'सैन्य कपाट' का अपभ्रंश प्रतीत होता है । क्या यह सिद्ध करता है कि सेनकपाट

1. सिरपुर एण्ड राजिम टेम्पल्स पृ. 23

2. एपी. इ. 31 पृ. 31

ग्राम वास्तव में श्रीपुर नगर का सेना द्वार था अर्थात् वहाँ पर सेना की चौकी (Military outpost) थी। यह प्राचीन मार्ग रायकेश जलाशय एवं दुर्ग के समीप से जलाशय के पश्चिम से जाता हुआ प्रतीत होता है।

लक्ष्मण मन्दिर:- (चित्र फलक १) सिरपुर स्थित समस्त स्मारकों में वहाँ का ईंटों का बना लक्ष्मण मन्दिर सबसे महत्वपूर्ण एवं सबसे अधिक सुरक्षित स्मारक है। क्योंकि उत्तरी भारत के प्राचीनतम शिखर मन्दिरों में से यह एक है। इस मन्दिर का उल्लेख उसी मन्दिर में पाये गये महाशिव गुप्त बालार्जुन के अभिलेख १ में प्राप्त होता है। जिसके अनुसार दक्षिण कोशल के पांडुवंशी नरेश महाशिव गुप्त बालार्जुन की माता वासटा द्वारा यह हरि (विष्णु) के मन्दिर के रूप में बनवाया गया था। रानी वासटा मौखरी नरेश सूर्यवर्मा (५५३ ई.) की पुत्री थी और यह मन्दिर उसके वैधव्य काल में बनवाया गया था। अतः मन्दिर के निर्माण की तिथि छठी शताब्दी का अन्त अथवा ७ वीं शताब्दी का प्रारम्भ रखा जा सकता है। इस मन्दिर की स्थापत्य एवं मूर्ति शैली भी उक्त तिथि का समर्थन करती है। मन्दिर का स्थूलकाय एवं सुदृढ़ शिखर का अन्तर्मुखी झुकाव भी इस युग का प्रतीक स्वरूप है। कर्निघम के अनुसार तोरण द्वार का शिल्प एरण और बनारस की भांति गुप्त शैली का है।^१

यह मन्दिर यद्यपि प्राप्त शिलालेख के अनुसार विष्णु का है परन्तु परम्परा से इस मन्दिर को लक्ष्मण मन्दिर कहा जाता रहा है। इसका कारण श्री वेंकट रमय्या के अनुसार^२ यह है कि मन्दिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित वैकुण्ठ नारायण (विष्णु) की मूर्ति को संभवतः स्थानीय लोगों ने लक्ष्मण की मूर्ति समझ लिया, क्योंकि लक्ष्मण शेष का अवतार माने जाते हैं और यह मूर्ति भी शेष नाग पर प्रतिष्ठित है तथा दो भुजाओं वाली है। चूँकि विष्णु की शेष पर बैठी हुई मूर्ति चार भुजाओं की मिलती है इसी लिए उक्त तथ्यों के प्रकाश में इस वैकुण्ठ नारायण की मूर्ति को लक्ष्मण की मूर्ति मानकर स्थानीय लोगों ने इसे लक्ष्मण मन्दिर का नाम दे दिया जबकि वस्तुतः यह विष्णु का मन्दिर है।^३

1. एपी. इ. 11 पृ 184

2. आ. सर्वे. रि. भाग-17, पृ. 27

3. ज. इ. हि. जिल्द 10 भाग 1 पृ. 162

4. उक्त मूर्ति का प्रकरण लक्ष्मण मन्दिर के सन्दर्भ में विशेष विवादग्रस्त है। श्री मुनि कान्तिसागर ने अपनी पुस्तक "खण्डहरों का वैभव" पृ. 354 में यह व्यक्त किया है कि प्रतिमा गायब हो जाने से यह नवीन प्रतिमा लाकर रख दी गई। उनके अनुसार वास्तुशास्त्रानुसार मन्दिर के इतने विशाल गर्भगृह और मूल द्वार को देखते हुए सहज में ही अनुमान किया जा सकता है कि उक्त प्रतिमा कम से कम इस मन्दिर की तो अवश्य ही नहीं है।

डा. एम. जी. दीक्षिन (सिरपुर एण्ड राजिम टेल्पत्स) के मतानुसार लक्ष्मण मन्दिर में रखी मूर्तियाँ बाद की हैं और चूँकि मन्दिर विष्णु को समर्पित था। इसीलिए इस बात की पूर्ण संभावना है कि विष्णु की सुन्दर मूर्ति जो कि लक्ष्मण मन्दिर में ही पाई गई है मूलतः मन्दिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित थी। (यह प्रतिमा सिरपुर के स्थानीय संग्रहालय में संग्रहीत है चित्र सं. 13)

लक्ष्मण मन्दिर प्रस्तर निर्मित एक ६ फीट ऊँचे धरातल (जंगती) पर प्रतिष्ठित है। बेगलर के अनुसार ¹ यह धरातल कोठरियों द्वारा निर्मित नींव के ऊपर आधारित था एवं लक्ष्मण मन्दिर के चारों ओर ईंटों के बने हुए आठ सहायक मन्दिर थे, जिनके भग्नावशेष बेगलर के भ्रमण के समय ईंटों के टीलों के रूप में वर्तमान थे जिनके कि समस्त चिन्ह सम्प्रति लुप्त हो चुके हैं। जंगती के पूर्वी छोर पर मन्दिर तक पहुँचने के लिये दुहरी सीढ़िया हैं।

श्री कृष्ण देव ² के अनुसार मन्दिर का पाद भाग अधिष्ठान भी कहा जाता है पूरे मन्दिर के लिए एक ही था, जिसमें कि खरशिला के ऊपर, १. खुर २. कुम्भ ३. कलश (फल-वनस्पति युक्त घट-पल्लव) ४. अन्तर्पत्र (अर्द्ध स्तंभों द्वारा निर्मित आले जिनके स्तंभशीर्षों पर घट पल्लव बने हैं), ५. शीर्षस्थ बल्लरीयुक्त सादा 'वाजन' जो कि फुल्लिकाओं की चित्रबल्लरी से अलंकृत है, तथा ६. चैत्य मेहराबों से अलंकृत 'कपोत' प्रतिष्ठित हैं। अधिष्ठान की कारनियों के अन्तर्गत और बहिर्गत पंचरथ शैली में अलंकृत हैं। परिणाम स्वरूप मध्यस्थ बहिर्गत अथवा 'भाद्र' पर स्थित कपोत की कारनियों पर तीन चैत्य मेहराब हैं और प्रत्येक दिशा में अवशिष्ट चारों बहिर्गतों पर प्रत्येक पर एक-एक चैत्य मेहराब हैं। यही प्रणाली मन्दिर के ऊपरी भाग में स्थित कपोत कारनियों में भी अपनाई गई है।

अधिष्ठान के ऊपर का भाग जिसे "जंघा" भी कहा जाता है 'अधिष्ठान' की अपेक्षा कृत कुछ अन्तर्गत हैं। इस 'जंघा' पर पूजा-स्थान के पाँचों बहिर्गतों पर स्थित अर्द्ध-स्तंभों का शिल्प है। जिसमें कि मध्यवर्ती (भद्र) विस्तीर्णतम है। इस जंघा के तीन और मध्य स्थान पर एक-एक अन्ध-वातायन है। (चित्र फलक ६) और पूर्व की ओर गर्भगृह में जाने का द्वार है। इन अन्धशरोखों के दोनों पार्श्व के पुश्तों में एक एक पूर्ण आले हैं। कोने के पुश्तों में लम्बे अर्धस्तंभों से युक्त बहुकोणीय छिछले अन्तर्गत (Recess) हैं एवं उनके अष्टकोणीय स्तंभ शीर्षों पर घट पल्लव का शिल्प है।

मन्दिर की तीन दिशाओं में स्थित ये अन्ध-वातायन काष्ठ-कपाटों की पूर्ण प्रति-कृति हैं। वातायन-दण्डों से विभक्त फलक, फुल्लिकाओं एवं कलहंसों से अलंकृत हैं। द्वार तीन शाखाओं में आबद्ध है, उनमें से प्रथम शाखा सादी एवं सरल रेखाओं से बनी है। दूसरी में गोल अर्द्ध-स्तम्भ है जिसके आधार में घट-पल्लव की रचना है तथा तीसरे में आधार पर अर्द्ध-फुल्लिका से युक्त कमल-दल की रचना है और यह शाखा द्वार को परिवृत्त करती है। इस अन्ध-वातायन के ऊपर एक सूर्य (Sun shade) है। सूर्य-छाद्युक्त

1. आ. स. रि. भाग 7 पृ. 186-193

2. ज. म. प्र. इ. प. न. 2 पृ. 36

अन्ध वातायन दो अर्द्ध स्तंभों के ढाँचे में बने हुए हैं। जिसके दण्ड चतुष्कोणीय हैं एवं स्तंभ शीर्ष घट-पल्लव-युक्त हैं। उत्तरी ओर छाद्य के ऊपर बहिर्गत बल्लियों की दो पंक्तियाँ हैं जिनमें से निचली पंक्ति सादी है परन्तु ऊपरी पंक्ति मानव-मुखी अथवा सिंह-मुखी स्थूलोदर यक्षों से अलंकृत है। पश्चिमी दिशा में इस चित्र बल्लरी में हाथियों के अग्र-भाग प्रदर्शित हैं। दक्षिण दिशा में ऊपरी चित्र बल्लरी में 'भूतों' की आकृतियाँ हैं जो कि भारतीय स्थापत्यकला में प्रदर्शित 'भूतों' की प्राचीनतम आकृतियों में से हैं। उत्तरी ओर अन्ध द्वारों के फलक हीरों एवं फुल्लिकाओं से अलंकृत हैं जबकि दक्षिणी दिशा के फलकों में हीरों की आकृति की फुल्लिकाओं की रचना है।

अन्ध-वातायनों के दोनों ओर स्थित आलों की रचना सादे देव मंदिर के रूप में की गई है। ये आले 'अर्द्ध कुंडु' द्वारा अलंकृत हैं। इन सबके ऊपर एक विशाल "चैत्य-वातायन" है जिसके ऊपर 'कीर्तिमुख' की रचना है। किनारे के पुश्तों में भी मध्यवर्ती "भद्र" की भांति घट-पल्लव-रचना से युक्त अर्द्ध स्तंभ हैं।

मन्दिर के निचले भाग "जंघा" एवं ऊपरी भाग "शिखर" की बीच में स्थित "वरंडिका" में कई अन्तर्गतों से युक्त विभिन्न प्रकार की शिल्प रचना है। जिनमें 'कपोतों' 'भूत' 'स्तंभ शीर्ष' और 'गज-रचना' प्रमुख है। मध्यवर्ती 'रथ' में भूत युक्त आले हैं। इसी प्रकार "अनुरथों" में निर्मित "सिंह" रचना साँची स्थित गुप्तकालीन मन्दिर के स्तंभ शीर्षों के समान है। दक्षिण दिशा में इन फलकों में कुछ अन्तर है। इन कपोत रचनाओं के ऊपर एक चौड़े अन्तर्गत में शतरंजी नमूने की रचना है जो कि धूप और छाया का मनोरम चित्र उपस्थित करता है।

इसके ऊपर स्थित शिखर में कई ढलाव (MOULDINGS) हैं जो कि चैत्य-मेहराब रचना से अलंकृत हैं, जिनके बीच में स्तंभ-समान सीधे दंड हैं। इन चैत्य-मेहराबों के ऊपर "कुंडु" से अलंकृत कपोतों की रचना है। संपूर्ण शिखर एक के ऊपर एक बने हुए चैत्य-मेहराबों की दो पंक्तियों से सुसज्जित हैं। ये चैत्य-मेहराब उत्तरोत्तर की ओर न्यून होते चले गये हैं।¹

शिखर की पूर्वी दिशा में स्थित त्रिकोणीय वातायन एक मौलिक एवं महत्वपूर्ण रचना है जो कि बोध गया में स्थित महाबोध मन्दिर के वातायन के समान है।² इनमें ईंटों के 25 तोड़ेदार रहें हैं और इसकी ऊँचाई व चौड़ाई गर्भगृह के द्वार के समान क्रमशः 6 फीट 3 इंच और 3 फीट 3 इंच है।³

1. विस्तृत विवरण के लिए देखिये ज. म. प्र. इ. प. भाग 2, पृ. 38

2. क. आ. स. रि. भाग 17 पृ. 27

3. डा. एम. जी. दीक्षित- 'इस प्रकार के त्रिकोणीय वातायन 'खरोद' और 'पुजारी पाली' के मन्दिरों में भी हैं।

मन्दिर के शिखर का ऊपरी भाग किस आकृति का था यह ज्ञात नहीं है। राजिव लोचन मन्दिर राजिम के शिखर के आधार पर ही उसका वर्तमान शिखर जो कि पहले पहले गिर चुका था, पुनर्निर्मित कर दिया गया है। डा. एम. जी. दीक्षित के अनुसार शिखर की छत संभवतः सपाट एवं आमलक से अलंकृत थी।¹

मन्दिर के गर्भगृह की रचना चौकोर है और इसके पार्श्वों की लम्बाई 9 फीट 9 इंच है। गर्भगृह का आन्तरिक भाग पूर्णरूपेण सादा है केवल दक्षिणी पार्श्व में एक आला है। गर्भगृह की छत ईंटों के रोड़े-दार रद्दों से निर्मित है, जो कि ऊपर की ओर उत्तरोत्तर न्यून होती जाती है और अन्त में इतनी न्यून हो जाती है कि इसे ईंटों के केवल एक रद्दे से ही ढका जा सके।

गर्भगृह के अन्दर एक आधुनिक निर्मित चबूतरे पर तीन मूर्तियाँ रखी हैं जिनमें मध्यवर्ती मूर्ति जिसे कि श्री वेंकट रमैया ने वैकुण्ठ नारायण की मूर्ति माना है² अति सुन्दर है। (चित्र फलक 4ब) यह लाल बलुये पत्थर से निर्मित है। और पंचफण युक्त सर्प कुण्डली पर सुखासन में प्रतिष्ठित है। मूर्ति द्विभुजी है। किरीट, मुकुट, कुंडल, रत्नोपवीत, कंठा, केयूर एवं कलाई की पट्टी उसके आभूषण हैं तथा मूर्ति अधोवस्त्र से युक्त है।

गर्भगृह के आगे 12-1/2 फीट लम्बा एवं चौड़ा एक अन्तराल है जिसकी छत गिर चुकी है। अन्तराल का अधो भाग (जंघा) अर्द्ध मग्नावस्था में विद्यमान है। अन्तराल में दो प्रस्तर स्तंभ हैं जो कि मंडप के स्तंभों की सीध में हैं तथा उनके पार्श्व में दो अर्द्धस्तंभ भी हैं। मंडप की भाँति अन्तराल की अन्तर्भित्तियाँ भी सादी थीं। गर्भगृह द्वार के ऊपर बाहर की ओर निकली हुई अवशिष्ट प्रस्तर शिलाएँ यह सिद्ध करती हैं कि अन्तराल की छत प्रस्तर शिलाओं के तोड़े-दार रद्दों से निर्मित थी एवं सपाट थीं। प्रतीत होता है कि प्रस्तर शिलाओं के ये रद्दे आंशिक रूप से मकर-मुखी प्रस्तर-दीवारगीरों पर आधारित थे। गर्भगृह द्वार के ऊपर ऐसे दो प्रस्तर-मकरमुख अब भी अवशिष्ट हैं। अन्तराल के आगे मन्दिर का मंडप था। मंडप के अधिष्ठान एवं जंघा का कुछ भाग अवशिष्ट है। उसके ऊपर का समस्त भाग गिर चुका है। अधिष्ठान का दक्षिणी भाग अधिक मात्रा में अवशिष्ट है। शेष भाग पुनर्निर्मित किया गया है, जिसको लेकर मंडप की लंबाई 25 फीट 6 इंच और चौड़ाई 17 फीट 9 इंच है। मंडप के अधिष्ठान का दक्षिणी पार्श्व 22 फीट की लम्बाई तक और जंघा का कुछ भाग 10 फीट तक अवशिष्ट है। ऊँचाई में 5-1/2 फीट तक का भाग अवशिष्ट है। मंडप का स्वरूप राजिम में स्थित राजिव-लोचन के मन्दिर के समान ही था।

1. सिरपुर एन्ड राजिम टेम्पल्स, पृ. 19

2. ज.इ.हि. जिल्द 40 भाग 1 पृ. 161

मंडप के पूर्वी छोर पर दुहरी सीढ़ियाँ थीं। मूलतः मंडप की लम्बाई में स्थित स्तंभों की पाँच पंक्तियाँ थीं जिनमें से केवल चार पंक्तियों के स्तंभों के आधार-मात्र अब अवशिष्ट हैं। प्रत्येक पंक्ति में दो स्तंभों के प्रत्येक पार्श्व में एक अर्द्ध स्तंभ है। इस प्रकार से मंडप में संभवतः 10 स्तंभ और 10 अर्द्ध-स्तंभ थे।¹ और इस प्रकार से संपूर्ण मंडप लम्बाई में तीन और चौड़ाई में पाँच कक्षों में विभक्त था। राजिवलोचन मन्दिर के मंडप की छत के आधार पर श्री कृष्णदेव ने यह अनुमान किया है कि संभवतः इस मन्दिर की छत भी नीचे की ओर से सपाट और प्रस्तर निर्मित थी।²

मन्दिर के गर्भगृह का तोरण द्वार शिल्पकला की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है (चित्र फ. 14)। यह ईंटों के स्थान पर लाल बलुये पत्थर से निर्मित है और ईंटों के रंग से पूर्ण मेल खाता है। तोरण द्वार पाँच खड़ी शाखाओं (फलकों) में विभक्त है। प्रथम शाखा गोल-अर्द्धस्तंभ के रूप में है एवं वनस्पति-अलंकरणों से सुसज्जित है। द्वितीय शाखा फुल्लिकाओं और हीरों के अलंकरण से युक्त है। तृतीय शाखा में मिथुन उत्कीर्ण है और चौथी शाखा गोलाकार अर्द्धस्तंभों के रूप में है जिसमें मानव-मूर्ति उत्कीर्ण है और बीच बीच में मिथुन तथा कुम्भ-पल्लव रचना से युक्त कमल की रचनाएँ हैं। पंचम शाखा में विष्णु के अवतार और कृष्ण लीला तथा अन्य पौराणिक दृश्य फलकों में उत्कीर्ण हैं। विष्णु अवतारों में मत्स्य, वराह, नृसिंह और राम तथा कृष्ण लीला में कालियदमन, काम-पराजय, कंस वध तथा केसी वध आदि के दृश्य उत्कीर्ण हैं। तोरण द्वार के लिटल में ललाट-बिंब के रूप में शेष शायी विष्णु का चित्र उत्कीर्ण है।

लक्ष्मण मन्दिर की ऊँचाई कनिंघम ने अधिष्ठान के ऊपर 45 फीट लिखी है।³ कनिंघम का कहना है कि सिरपुर लक्ष्मण मन्दिर के मंडप के स्तंभ नावों पर रखकर महानदी द्वारा राजिम लाये गये थे।

चौथी शताब्दी से पूर्व भारत में ईंटों के स्थापत्य के संबंध में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। डा. एम. जी. दीक्षित के अनुसार सिरपुर का लक्ष्मण मन्दिर और कानपुर जिले का भीतर गांव मन्दिर, पाल युग के (10 वीं शताब्दी) अहिच्छत्र, नालन्दा तथा पहाड़पुर स्थित मन्दिरों एवं गुप्तकाल के मन्दिरों के मध्य की स्थिति को प्रदर्शित करते हैं।⁴ लक्ष्मण मन्दिर का ईंटों का शिल्प विशेष रूप से अत्यन्त ही कलात्मक है। ईंटों जैसे कोमल पदार्थ पर इतने सूक्ष्म शिल्प का प्रदर्शन महत्वपूर्ण है। प्रतीत होता है मन्दिर

1. श्री कृष्ण देव, ज.म.प्र.इ.प. भाग 2 पृ. 39

2. बेगलर का अनुमान है कि मंडप की छत संभवतः सपाट थी और उस पर एक पिरामिड के आकार की दिखावे की छत थी। (आ.सर्वे रि. भाग 7 पृ. 186-193)

3. आ.सर्वे रि. भाग 17, पृ. 27

4. सिरपुर एण्ड राजिम टेम्पल्स पृ. 21

में प्रयोग किये जाने के पश्चात् ईंटों को इस प्रकार से घिसा गया था कि उनके जोड़ दृष्टिगोचर न हों। इस प्रकार दूर से देखने पर पूर्ण मन्दिर एक ठोस आकार के रूप में दिखाई पड़ता है और उसमें ईंटों के जोड़ प्रतिलक्षित नहीं होते हैं¹ और जब मन्दिर के ऊपर अवलेप रहा होगा उस समय मन्दिर वर्तमान की अपेक्षाकृत अधिक मनोरम दिखाई पड़ता रहा होगा। अवलेप के अवशिष्ट बिन्दु कहीं-कहीं पर अब भी दृष्टिगोचर होते हैं। डा० एम० जी० दीक्षित के अनुसार उन्हें इस अवलेप के एक नमूने में चूने की सफेदी की 32 परतें प्राप्त हुईं।²

लक्ष्मण मन्दिर की स्थापत्य शैली उसके काल निर्धारण के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है। श्री कृष्णदेव के अनुसार तोरण द्वार पर प्रदर्शित आकृति रचनाएं जिनमें विष्णु के अवतार एवं कृष्ण प्रदर्शित हैं, मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से गुप्तकाल की अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं और उनमें गुप्तकालीन कला का सहज सौष्ठव और आकर्षण नहीं है। मन्दिर के तोरण द्वार पर गंगा और यमुना की अनुपस्थिति और उन पर कृष्ण लीला तथा हिन्दू पौराणिक कथाओं के उत्कीर्ण होने से यह ज्ञात होता है कि समस्त गुप्तकालीन मन्दिरों जिनका कि अन्तिम रूप देवगढ़ स्थित 'दशावतार' मन्दिर में प्रतिलक्षित होता है, से लक्ष्मण मन्दिर बाद के काल का है। लक्ष्मण मन्दिर के तोरण द्वार फलक पर उत्कीर्ण वराह मूर्ति उदयगिरि के वराह के समान है परन्तु दोनों में कुछ अन्तर भी है। श्रीकृष्ण देव के अनुसार चूंकि लक्ष्मण मन्दिर की वराह मूर्ति अष्टभुजीय है और उदयगिरि की द्विभुजीय इसलिए अवश्यमव लक्ष्मण मन्दिर की वराहकृति उदयगिरि की वराहकृति से लगभग दो शताब्दी पश्चात् की है।

लक्ष्मण मन्दिर की कृष्ण लीला के दृश्य वादामी गुफाओं के कृष्ण लीला दृश्यों के ही समान है और यदि कनिंघम के मत को मान लिया जाय कि लक्ष्मण मन्दिर के स्तंभ राजिम ले जाये गये तो हम इन स्तंभों की शालभंजिकाओं की समता भी वादामी गुफाओं में पाते हैं, जिससे कि उनकी तिथि छठवीं शताब्दी के अन्तिम समय की निरूपित होती है।

लक्ष्मण मन्दिर की कतिपय स्थापत्य विशेषताएं प्रमुख हैं। शिखर के विभिन्न तलों को प्रदर्शित करने वाले भूमि आमलक, अलंकृत छाद्य, भूत, गज शिल्प, अल्प शिखर, अधिष्ठान की ढलाईयाँ यथा-खुर, कुम्भ, कलश, अन्तर्पत्र तथा कपोत आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो कि उत्तरी भारत के मन्दिरों में ७ वीं शताब्दी से प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त अर्द्ध स्तंभों में आबद्ध आले, जिनके ऊपर चैत्य-मेहराब उत्कीर्ण हैं, भी अपने ढंग

1. सिरपुर की ईंटों की लम्बाई 16 इंच या 16- 1/2 इंच, चौड़ाई 8 इंच और मोटाई 2- 1/2 इंच है।

2. सिरपुर एण्ड राजिम टम्पल्स पृ. 19

की प्राचीनतम शैली के उदाहरण हैं। यह शैली उत्तरी भारत के मध्यकालीन मन्दिरों में बाद में प्रचलित हुई। इस प्रकार स्थापत्य शैली की दृष्टि से सिरपुर का यह लक्ष्मण मन्दिर गुप्तकालीन मन्दिरों एवं उत्तर भारत के प्रारंभिक मध्यकालीन मन्दिरों के बीच के संक्रमण काल का प्रतिनिधित्व करता है।

गन्धेश्वर मन्दिर :— यह मन्दिर वास्तव में प्राचीन काल का गन्धर्वेश्वर मन्दिर है।¹ गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। यह महानदी के तटपर स्थित है (चित्र फलक २) स्थापत्य कला अथवा पुरातत्व की दृष्टि से इस मन्दिर का कोई विशेष महत्व नहीं है। क्योंकि इसका अधिकांश भाग पुनर्निर्मित है। फिर भी इस समय यह सिरपुर का प्रधान मन्दिर है। अध्याय तीन में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करते समय यह व्यक्त किया गया है कि भोंसलों के समय में सिरपुर के कुछ मन्दिरों का पुनर्निर्माण उन्हीं के प्राचीन अवशेषों की सहायता से किया गया। गन्धेश्वर मन्दिर भी संभवतः उसका एक प्रमुख उदाहरण है। कहा जाता है कि चिमन जी भोंसले ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था।² एवं उसकी व्यवस्था के लिये कुछ ग्राम भी दिये थे।

इस मन्दिर को देखने से पता चलता है कि गन्धेश्वरमन्दिर (जो कि संभवतः भग्न हो चुका होगा) के प्राचीन स्थल पर इस नव मन्दिर के निचले भाग में बाहर की ओर तथा मण्डप के अन्दर प्राचीन वैष्णव एवं शैव धर्म की मूर्तियाँ क्रमहीन दशा में यत्न तत्न प्रतिष्ठापित कर दी गई हैं। मन्दिर के गर्भगृह का तोरण द्वार भी प्राचीन है। तोरण द्वार के पश्चिम एवं पूर्वी दोनों पार्श्वों पर शिव संबंधी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। मन्दिर में प्राचीन मूर्तियों की भाँति प्रस्तर अभिलेख भी यत्न तत्न लगा दिये गये हैं: कुछ अभिलेख स्तंभों पर ही उत्कीर्ण हैं। सर एलेक्जेंडर कनिंघम ने गन्धेश्वर मन्दिर में लगे ६ अभिलेखों का वर्णन किया है।³ ये अभिलेख श्रीपुर के पांडुवंशी राजा महाशिवगुप्त बालार्जुन के राज्य काल से संबंधित हैं। परन्तु इन अभिलेखों में से कुछ इस मन्दिर से संबंधित नहीं हैं। डॉ. हीरालाल के मतानुसार उनमें से केवल दो या तीन ही इस मन्दिर से संबंधित हैं।⁴ इनमें से एक अभिलेख में गन्धेश्वर की पूजा के लिए पुष्पों के प्रबन्ध किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

शिव मन्दिर २ :— यह शिव मन्दिर सिरपुर से सेनकपाट जाने वाले मार्ग के पूर्वी किनारे पर आनन्द प्रभू कुटी विहार के दक्षिण-पश्चिम में लगभग १०० मीटर की दूरी पर भग्नावस्था में स्थित है। मन्दिर में गर्भ-गृह, अन्तराल एवं मण्डप की योजना अब भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। पञ्चायतन शाखा में बना हुआ यह मन्दिर तारकांकित योजना का

1. श्री शवल अभिनन्दन ग्रन्थ पृ 188

2. खंडहरी का वैभव पृ. 356

3. आ. सर्वे. रि. भाग 17, पृ. 27

4. इन्सक्रिप्शन्स इन सी. पी. एण्ड बरार पृ. 98

प्रदर्शन करता है। प्रसिद्ध आनन्द प्रभु कुटी विहार के अत्यन्त समीप इसकी स्थिति और भी महत्वपूर्ण है। (रेखाचित्र ६)

दुर्ग— गणेश्वर मन्दिर से लगभग एक किलो मीटर पूर्व की ओर एवं रायकेर जलाशय के दक्षिणी छोर पर स्थित लगभग ५ मीटर की ऊँचाई के टीले को डॉ. एम. जी. दीक्षित ने दुर्ग की संज्ञा दी है। (रेखाचित्र २)

राम मन्दिर :— यह मन्दिर लक्ष्मण मन्दिर के पूर्व में लगभग 100 मीटर की दूरी पर रायकेरा जलाशय में उत्तर में भग्नावस्था में स्थित है। मन्दिर की जगती अधिष्ठान और जंघा का कुछ भाग अवशिष्ट है। यह मन्दिर प्रस्तर शिलाओं से निर्मित जगती पर स्थित था। बेगलर¹ के अनुसार इसकी जगती भी कोठरियों द्वारा निर्मित नींव पर बनी थी। यह मन्दिर भी लक्ष्मण मन्दिर की भाँति तारकाकृति में बनाया गया था। मन्दिर की भित्तियों पर चूने के अवलेप के चिन्ह यत्र तत्र अवशिष्ट दिखाई पड़ते हैं। इसी मन्दिर के पार्श्व में समान धरातल पर एक अन्य मन्दिर भी था, परन्तु अब वह पूर्ण रूप से भग्न हो चुका है।

उक्त प्रमुख मन्दिरों के अतिरिक्त बेगलर ने तथा कनिधम ने अपनी रिपोर्ट में सिरपुर में स्थित तत्कालीन मन्दिरों के अवशेषों का विस्तृत वर्णन किया है जिससे स्पष्ट होता है कि सिरपुर में मन्दिरों की संख्या बहुत अधिक थी। बेगलर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि रायकेरा जलाशय से लगभग चौथाई मील की दूरी पर नाले के किनारे-किनारे कई मन्दिरों के समूह थे जो कि सभी कोठरियों द्वारा बनी हुई नीवों पर निर्मित थे। परन्तु वे सब अब नष्ट हो चुके हैं। इन मन्दिरों के निर्माण में बेगलर के अनुसार नींव में लम्बी एवं आड़ी दीवारों द्वारा निर्मित असमान आयतों के कमरे थे जो कि रोड़दार रद्दों से निर्मित थे और अन्त में स्थूल एवं दृढ़ प्रस्तर-शिलाओं से आच्छादित थे। परन्तु इसमें कहीं भी रद्दों को जोड़ने का कोई पदार्थ प्रयुक्त नहीं किया गया। इनमें निचले भागों में कंकरों द्वारा निर्मित दीवालें हैं परन्तु उनका सामने का भाग समतल है। इन कोठरियों द्वारा निर्मित नीवों पर समतल चबूतरे होते थे जिन पर कि मन्दिर आधारित थे। नींव की इन कोठरियों में एक से दूसरे तक पहुँचने के लिये कोई द्वार नहीं होता था। और इस प्रकार की नींव की कोठरियाँ उस समय व्यक्तियों के लिये एक पहेली की तरह थीं। बेगलर ने लिखा है² कि श्री चिशाम जो कि उस समय रायपुर में दीवानी के एक अधिकारी थे ने सिरपुर स्थित इन नीवों को कोठरियों की इस पहेली को सुलझाने के लिये वहाँ पर स्थित सबसे विशाल मन्दिर को खुदवाया था। वास्तव में मन्दिर की नींव बनाने की यह एक प्रकार की विधि थी, जिसे तत्कालीन व्यक्ति पहेली की दृष्टि से देखते थे। बेगलर ने सिरपुर स्थित रायकेरा जलाशय की पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम दिशा में

1. आ. स. रि. भाग 7 पृ. 186-193

2. वही

स्थित लगभग दस मन्दिरों के भग्नावशेषों का वर्णन किया है। उनमें से कुछ को उन्होंने वैष्णव और कुछ को शैव निरूपित किया है।

सुरंग टीले का मन्दिर :- आधुनिक सिरपुर ग्राम में प्रवेश करते ही सड़क के किनारे एक विशालकाय टीला है जो कि उपरोक्त अधिकारी श्री चिशाम के क्रमहीन और अवैज्ञानिक उत्खनन के कारण बड़ी अस्त व्यस्त स्थिति में वर्तमान है। इस सुरंग टीले के मन्दिर के संबंध में स्थानीय अनुश्रुति यह है कि इसमें एक रानी रहती थी जो कि सुरंग के द्वारा इस मन्दिर से महानदी तक प्रतिदिन स्नान करने जाती थी और वहाँ कमल की पंखुड़ियों पर बैठकर स्नान करती थी। एक बार उसने अपने राज्य के प्रत्येक व्यक्ति से कर के रूप में 12 गाड़ी कौड़ियाँ एकत्रित करवायीं। दूसरे दिन जब वह नदी में स्नान करने गयी तो कमल दल उसका भार वहन न कर सका। फलस्वरूप उसका कारण समझकर उसने सभी कौड़ियाँ अपनी प्रजा को वापस कर दीं। इसी प्रकार एक दूसरी अनुश्रुति है कि एक बार किसी विदेशी राजा ने इस नगर पर आक्रमण किया, फलस्वरूप सभी नगर निवासी सुरंग टीले में स्थित मन्दिर के अन्दर प्रविष्ट हो गये, परन्तु उनके साथ एक कुत्ता भी प्रविष्ट हो गया, जो कि अन्दर से भौंकने लगा। फलस्वरूप शत्रुओं ने उस मन्दिर को तोड़ डाला। कहा जाता है कि तभी से यह नगर नष्ट हो गया।

उपरोक्त अनुश्रुतियों में कहाँ तक सत्यता है नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह निश्चित है कि इस टीले का सुरंग टीला नाम इसीलिये पड़ा कि यहाँ पर स्थित मन्दिर भी पूर्वोक्त विधि के अनुसार कोठरियों द्वारा निर्मित नींव पर बना था। उन नींवों की कोठरियों की दीवारें समानान्तर लम्बाई में बनी थीं, जिससे भ्रमवश लोगों ने उन्हें सुरंग की दीवारें समझ लिया।

इस सुरंग टीले में महाशिव गुप्त बालार्जुन के समय का अभिलेख प्राप्त हुआ है।¹ जिससे स्पष्ट होता है कि यहाँ पर स्थित मन्दिर उसी के समय का रहा होगा। इस मन्दिर के भग्नावशेषों के आधार पर कनिंघम ने यह अनुमान लगाया है कि कदाचित् यह मन्दिर सिरपुर का विशालतम मन्दिर रहा होगा।² उनके अनुसार इसका अधिष्ठान 30 फुट ऊँचा था। बेगलर के अनुसार³ यह मन्दिर नालन्दा स्थित बालादित्य के मन्दिर के समान ऊँचा रहा होगा। इस मन्दिर का गर्भगृह 60 वर्ग फीट था। अधिष्ठान की ऊँचाई के अनुपात के दृष्टिकोण से बेगलर ने इस मन्दिर की ऊँचाई 145 फीट अनुमानित की है।

1. इन्सक्रिप्शन्स इन सी. पी. एण्ड बरार, पृ. 111

2. आ. स. रि. भाग 17, पृ. 27

3. वही, भाग 7, पृ. 186-193

सुरंग टीले के इस विशालकाय मन्दिर के अतिरिक्त बेगलर और कर्निघम ने सिरपुर-स्थित कतिपय अन्य मन्दिरों के अवशेषों का वर्णन किया है। जिससे अनुमान होता है कि प्राचीन श्रीपुर पूर्णरूपेण मन्दिरों का नगर था।

जैन मन्दिर :- बेगलर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि गन्धेश्वर मन्दिर के समीप स्थित छोटे किले के पास एक जैन मन्दिर के अवशेष हैं क्योंकि इसमें एक संकल्पित चैत्य पाया गया था, जिसके चारों ओर चार नग्न जिनों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। बेगलर का मत है कि यह असंभव नहीं है कि उपरोक्त स्थान एक जैन विहार रहा हो। केवल कठिनाई इस बात की है कि इसकी स्थिति गन्धेश्वर मन्दिर के इतने समीप पड़ती है।¹

लघु दुर्ग :- गन्धेश्वर मन्दिर से लगभग 50 फीट उत्तर पूर्व में एक प्राचीन नगर स्थल से मिला हुआ कटे पत्थरों से निर्मित दीवारों का एक घेरा है जिसे स्थानीय लोग छोटा किला कहकर पुकारते हैं। इसकी दीवारें चार फुट चौड़ी हैं और इसका घेरा 350 फीट 200 फीट है। कर्निघम का मत है कि घेरे के मध्य में स्थित टीलों में एक मन्दिर के अवशेष हैं, परन्तु किले के नहीं, जैसा कि लोग कहते हैं। छोटे किले के पश्चिम की ओर 'देवी का धाम' नामक स्थान पर बहुत स्त्री मूर्तियाँ एकत्रित थी। उपरोक्त घेरे के उत्तर पूर्व कोने में एक चौकोर कुआँ है (6 फीट 4 इंच चौड़ी)। वर्तमान में कर्निघम के मतानुसार उपरोक्त घेरे के समीप एक मन्दिर स्थित है, जिसके बाह्यभाग में महिषासुर मर्दिनी एवं गंगा की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित कर दी गई हैं। पूर्व पृष्ठों में डा. एम. जी. दीक्षित के उत्खनन स्थलों के संदर्भ में इससे संबंधित वर्णन हो चुका है।

रायकेरा जलाशय :- उपरोक्त मन्दिरों के अतिरिक्त सिरपुर नगर का एक महत्वपूर्ण अंग वहाँ पर पूर्व दिशा में स्थित रायकेरा मन्दिर जलाशय है। यह जलाशय गन्धेश्वर मन्दिर से लगभग 1 किलो मीटर पूर्व में स्थित है, एवं लगभग 250 अथवा 300 वर्ग गज की सीमा में विस्तीर्ण है। छत्तीसगढ़ के प्राचीन स्थलों में यह एक विशेषता रही है कि प्रत्येक प्राचीन मन्दिर अथवा नगर के समीप एक जलाशय उसके अभिन्न अंग के रूप में पाया जाता है। आज भी छत्तीसगण में जलाशयों का विशेष महत्व है। रायकेरा जलाशय भी कदाचित् प्राचीन श्रीपुर का एक महत्वपूर्ण अंग था। इस जलाशय के पश्चिमी छोर पर एक बाँध बना है। एवं जलाशय के संबंध में कतिपय अनुश्रुतियाँ भी प्रचलित हैं।

कहा जाता है कि एक बार अकाल पड़ने के कारण यह जलाशय सूखने लगा। जिसके कारण इस जलाशय में रखे हुए 6 आगर और 6 कोरी सोने से भरे हुए मिट्टी के बड़े

1. आ. स. रि. भाग 7 पृ. 186-193

चत्तेन बाहर दिखाई पड़ने लगे और चूँकि जलाशय में पानी कम हो गया था, इसी लिये वे धीरे-धीरे खिसकते हुए महानदी, शिवनाथ और नीलगर नामक नदियों के संगम स्थल पेसर धारा पर चले गये क्योंकि वहाँ पर पानी अधिक था और वहाँ वे आज भी रखे हुए बताये जाते हैं। इसी प्रकार एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार इस जलाशय में एक चरवाहे को पारस पत्थर भी प्राप्त हुआ था।

सिरपुर में स्थित इन मन्दिरों के भग्नावशेषों एवं वर्णनों से ज्ञात होता है कि वास्तव में पांडववंशी राजाओं के समय में मन्दिर निर्माण कला के क्षेत्र में ईंटों के मन्दिरों का यह केन्द्र स्थल था और कदाचित् यहाँ के मन्दिर निर्माण कला से ही प्रभावित होकर महानदी के तट पर स्थित अन्य स्थलों जैसे पुजारी पाली, खरोद और राजिम आदि स्थानों पर भी उस काल में इस कला का प्रचार व प्रसार हुआ। इन स्थानों में स्थित मन्दिर इस तथ्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

मूर्ति कला :- श्रीपुर के पांडुवंशी राजाओं के काल में श्रीपुर दक्षिण कौशल की मूर्ति कला का सर्जनात्मक केन्द्र था। प्रस्तर मूर्तियाँ, धातु मूर्तियाँ एवं मृण्मय मूर्तियों की विशाल सामग्री श्रीपुर में उत्खनन द्वारा, खोज द्वारा, अथवा अनायास प्राप्त हुई है। सैकड़ों की संख्या में ये अब भी श्रीपुर के असंख्य भग्नावशेषों के साथ बिखरी पड़ी और कितनी धरातल की गोद में प्रच्छिन्न है इसका अनुमान लगाना कठिन है। मूर्ति कला के क्षेत्र में भी श्रीपुर का एक पृथक् कलात्मक अस्तित्व सामने उभर कर आता है।

प्रस्तर मूर्तियाँ :- श्रीपुर के उत्खनन में डॉ. एम. जी. दीक्षित के तीन वर्ष के कार्य में प्रस्तर मूर्तियों की विशाल सामग्री प्राप्त हुई। 1954 में शिव मन्दिर-1 के उत्खनन में उन्हें जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं उनमें महिषासुर मर्दिनी देवी, एक द्वार पालिका की आकृति और एक राजकीय दम्पति की चित्राकृति उल्लेखनीय है।¹ इसके अतिरिक्त अनेकों महत्वपूर्ण मूर्तियाँ आज भी उस मन्दिर के चारों ओर बिखरी पड़ी हैं, जिनका उचित मूल्यांकन उनके संग्रह एवं संरक्षण के पश्चात् ही संभव है। आनन्द प्रभु कुटी विहार के उत्खनन से प्राप्त बौद्ध एवं हिन्दू धर्म की प्रतिमाएँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इस विहार के तोरण द्वार पर दोनों ओर स्थित दो द्वार पालों की विशाल प्रतिमाएँ थीं और छज्जे की दीवाल के पार्श्वों पर कई यक्षों की प्रतिमाएँ थीं।² आज भी उनके कुछ अवशेष भग्नावस्था में उक्त स्थल पर दिखाई पड़ते हैं। इस विहार के देव-मन्दिर में स्थित बुद्ध की विशाल प्रतिमा भव्यता, दृढ़ता एवं विशालता की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है। इसकी ऊँचाई 611 फीट है (चि. फ. 5)। यह सिंहासन पर भूमिस्पर्श मुद्रा में बैठी है।

1. शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. 188

2. इण्डियन आर्कियालाजी-1954-55 पृ. 24

इस मूर्ति के दक्षिण पार्श्व में पद्मपाणि की प्रतिमा खड़ी है, जिससे अनुमान है कि वाम पार्श्व में वज्रपाणि की प्रतिमा रही होगी जो कि अब लुप्त है। बुद्ध की प्रतिमा की एक विशेषता यह है कि यह मूर्ति कई प्रस्तर-खण्डों को एक दूसरे पर रखकर बनाई गई है, जो कि भारतीय मूर्ति कला का एक असाधारण नमूना है।¹ ये मूर्तियाँ लाल बलुये पत्थर पर निर्मित हैं, जो कि कोमल और शीघ्र ही विनाश शील होता है, जिससे कि मूल शिल्पकारी के सूक्ष्म विवरण शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। परन्तु जहाँ पर भी ये भली-भाँति सुरक्षित हैं वहाँ इनकी शिल्पकारी की सूक्ष्मता एवं उनके अद्भुत सौन्दर्य का बोध होता है। पांडव कलाकार की ये विशेषताएं अधिक अच्छे रूप में सामने आती हैं, जबकि उसने किसी कठोर एवं अच्छी श्रेणी के माध्यम पर कार्य किया है। इसके कुछ उदाहरण छोटी-छोटी प्रतिमाओं के रूप में प्राप्त हुए हैं। इनमें से हरे रंग के क्लोराइड शिष्ट की बनी हुई मंजुश्री (रायपुर संग्रहालय में सुरक्षित) की मूर्ति सर्वोत्तम है। आनन्द प्रभु कुटी विहार के देव मन्दिर के द्वार के दक्षिण पार्श्व पर मकर वाहिनी गंगा की विशाल प्रतिमा है। प्रतीत होता है कि यमुना की मूर्ति वामपार्श्व से लुप्त हो चुकी है। इस विहार की एक अन्य उल्लेखनीय प्रतिमा कुबेर की है, जो कि उत्तरी बरामदे और तोरण द्वार के मध्य स्थित अन्तराल में पश्चिमी दीवाल में स्थित एक आले में प्रतिष्ठित है। यद्यपि लाल बलुये पत्थर के निम्न कोटि के माध्यम पर उत्कीर्ण होने के कारण उसका सूक्ष्म अब समाप्त होता जा रहा है। परन्तु शिल्प की सूक्ष्मता, मूर्ति के अंगों का अनुपात और उसकी भव्यता दर्शनीय है। सिरपुर से प्राप्त प्रस्तर मूर्तियों में यह एक उत्कृष्ट नमूना है। डॉ. एम. जी. दीक्षित ने लिखा है¹ कि सबसे सुन्दर मूर्ति मठ के मुख्य देव स्थान की मूर्तियों की अनुकृति में निर्मित सिंहासनासीन महात्मा बुद्ध की एक छोटी सी मूर्ति है जो कि शिल्प की सूक्ष्मता और औजारों के सुन्दर नैपुण्य को प्रकट करती है। एक अन्य छोटी प्रतिमा में महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों पद्मपाणि एवं वज्रपाणि के साथ अवस्थित हैं। यह एक प्रस्तर शिला में अपने प्रभा मण्डलों के साथ निर्मित की गई है। तथा खंडित होने पर भी अपने सौन्दर्य को प्रकट करती है।

इसी प्रकार स्वस्तिक विहार में भी मुख्य देव मन्दिर में 8 फीट 6 इंच की विशाल बुद्ध प्रतिमा सिंहासन पर भूमिस्पर्श मुद्रा में प्रतिष्ठित है। एवं उसके दक्षिण पार्श्व पर पद्मपाणि की प्रतिमा है। विहार संस्था 1-5 में भी उत्खनन के समय डॉ. दीक्षित को मध्यवर्ती कमरे में फर्श पर अवलोकितेश्वर, तारा, और मंजुश्री आदि की बुद्ध की सहायक मूर्तियाँ प्राप्त हुईं जिन पर कि बौद्ध बीज मंत्र 7 वीं शताब्दी के अक्षरों में उत्कीर्ण है, जो कि तिथि निश्चित करता है।

1. सिरपुर एण्ड राजिम टेम्पल्स पृ. 22

श्रीपुर के पांडुवंशो नरेशों के आधिपत्य में बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण सभी धर्मों का सहअस्तित्व था और यही कारण है कि सभी धर्मों की मूर्तियाँ भी वहाँ प्राप्त होती हैं। जैन धर्म की मूर्तियाँ यद्यपि इतनी अधिक संख्या में प्राप्त नहीं हुई हैं फिर भी पार्श्वनाथ की उद्मासन में ध्यानस्थ प्रतिमा उल्लेखनीय है। तीर्थंकर के मस्तक पर सप्त फण वाले सर्प का छत्र है।¹

उक्त मूर्तियों के अतिरिक्त सिरपुर स्थित गन्धेश्वर मन्दिर के प्रांगण में कई मूर्तियाँ एकत्रित हैं एवं मन्दिर के अधोभाग एवं अहाते की दीवारों में प्रतिष्ठित कर दी गई हैं। उनमें से कुछ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिस्पर्शमुद्रा में आसीन महात्मा बुद्ध की मूर्ति है। डॉ. एम. जी. दीक्षित ने इस प्रकार की दो मूर्तियों का वर्णन किया है।² परन्तु संप्रति केवल एक प्रतिमा ही वृक्ष के नीचे चबूतर पर प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति के प्रभा मंडल में बौद्ध मंत्र 7 वीं 8 वीं शताब्दी के अक्षरों में उत्कीर्ण हैं। डॉ. एम. जी. दीक्षित का मत है कि संभवतः शिवगुप्त बालार्जुन द्वारा निर्मित विहार से ये मूर्तियाँ लाई गईं थीं। गन्धेश्वर मन्दिर की दीवारों में श्री विष्णु के बराह अवतार, गरुड़ द्वारा विष्णु के ले जाने तथा शैव धर्म सम्बन्धी मूर्तियाँ हैं। परन्तु सिन्दूर और चूने के निरंतर प्रयोग के कारण उनके विभिन्न अवयव अल्प हो गये हैं। गर्भगृह के तोरण द्वार में रावण द्वारा कैलाश पर्वत को हिलाने का दृश्य तथा शिव सम्बन्धी अन्य चित्र उत्कीर्ण हैं। मन्दिर की बाहिरी दीवारों में भी शिव पार्वती की ललितासन की मूर्तियाँ एवं विष्णु की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं जो कि पुनर्निर्माण के समय अस्त-व्यस्त रूप में मन्दिर के अधिष्ठान में प्रतिष्ठित कर दी गई हैं। गन्धेश्वर मन्दिर के अहाते में निर्मित एक आधुनिक यज्ञ मण्डप की पृष्ठवर्ती दीवाल में शिव की एक प्रतिमा प्रतिष्ठापित है जो शिल्प कला एवं मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त ही उत्कृष्ट है। (चि. फ. 5 अ) इस प्रकार की शिव प्रतिमा दक्षिण कोशल में बहुत कम देखने को मिलती है। ● महिषासुरमर्दनी की मूर्तियाँ भी प्रांगण के अन्य भागों में प्रतिष्ठित हैं। गन्धेश्वर मन्दिर के बाह्य भाग में एवं प्रांगण की दीवारों में प्रतिष्ठित शंकर पार्वती की ललितासन मूर्तियाँ एवं विष्णु की काले पत्थर में निर्मित मूर्तियाँ शिल्प एवं मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। ये मूर्तियाँ कहाँ से लाई गईं यह सुविदित नहीं है। श्री मुनिकान्ति सागर के अनुसार ये अवशेष लक्ष्मण देवालय से लाकर यहाँ रखवा दिये गये थे।³

1. यह मूर्ति रायपुर संग्रहालय में सुरक्षित है।

2. श्री शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ पृ. 188

3. खंडहरों का वैभव, पृ. 356

● इस प्रतिमा में शिव को नृत्य करते हुए दिखाया गया जिससे कुछ विद्वानों ने इसे शिव तांडव की प्रतिमा अनुमानित किया है। शिव के विभिन्न हाथों में विभिन्न अस्त्र हैं एवं वे उर्ध्वलिङ्ग में प्रदर्शित किये गये हैं, जिसके कारण कुछ विद्वानों ने इसे शिव तांडव की प्रतिमा न मानकर लकुलीश की प्रतिमा माना है (चित्र)।

गन्धेश्वर मन्दिर के सामने ही स्थित हनुमान के मन्दिर में भी कातिकेय आदि की प्रतिमाएँ हैं। हनुमान मन्दिर के पृष्ठवर्ती भाग में महिषासुरमर्दिनी, गंगा गणेश आदि की मूर्तियाँ स्निग्ध श्याम-पाषाण पर उत्तम ढंग से उत्कीर्ण हैं। इनमें अष्ट भुजी देवी की प्रतिमा सर्वश्रेष्ठ है। मुनिकान्ति सागर का कहना है कि उक्त अष्ट भुजी प्रतिमा के अस्त्रों के समान ही शस्त्र वाले कुछ जुझार भी उन्होंने सिरपुर में देखे, जिन पर संवत् 1106 और संवत् 1403 के लेख उत्कीर्ण थे।¹

गन्धेश्वर मन्दिर के पश्चिम में स्थित नदी द्वार का तोरण भी प्राचीन प्रतीत होता है जिस पर विभिन्न मूर्तियाँ स्थित हैं। इसके समीप के वरामदों में भी कई मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हैं।

गन्धेश्वर मन्दिर के पूर्वोत्तर में स्थित छोटा किला नामक स्थान पर भी कई मूर्तियाँ यत्रतत्र बिखरी पड़ी हैं जिनमें महिषासुर मर्दिनी देवी (अष्टभुजी) एवं गंगा की प्रतिमाएँ समीपस्थ देवी के मन्दिर के बाहिरी भाग में पश्चिम की ओर स्थित हैं। उस स्थान का नाम भी कनिष्क ने अपनी रिपोर्ट में देवी का नाम लिखा है। और वहाँ पर स्थित सिंह बाहिनी दुर्गा एवं गोमुखी अष्टभुजी की प्रतिमा भी देवी के मन्दिर के तोरण द्वार में प्रतिष्ठित है जिसका वाहन बैल है। इसके अतिरिक्त लक्ष्मण मन्दिर के तोरण द्वार पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ जिनका विवरण लक्ष्मण मन्दिर के वर्णन के साथ किया जा चुका है, उक्त युग की शिल्प कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं। लक्ष्मण मन्दिर की सफाई करने से बहुत-सी मूर्तियाँ तत्र स्थित मलबे से प्राप्त हुई थीं। जिन्हें लक्ष्मण मन्दिर के समीप स्थित संग्रहालय में एकत्रित कर दिया गया है। उक्त संग्रहालय में संग्रहीत सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतिमा एक 'चतुर्मुख लिंग' है जो सम्प्रति उक्त संग्रहालय के पश्चिमी वरामदे में रखा हुआ है। (चित्र फलक 7) यह चतुर्मुख लिंग लक्ष्मण मन्दिर के समीपवर्ती क्षेत्र की सफाई करते समय प्राप्त हुआ था। इसकी ऊँचाई 2 फुट 8 1/2" है और अच्छे बैसाल्ट पत्थर पर उत्कीर्ण है। श्री एम. वेंकट रमैया के अनुसार कला के दृष्टिकोण से यह प्रतिमा आज तक प्राप्त प्रारंभिक सर्वोत्तम चतुर्मुख लिंगों में से एक है।² उन्होंने शिल्प शैली एवं अन्य चिन्हों के आधार पर इसे लक्ष्मण मन्दिर में प्रतिष्ठापित विष्णु की मूर्ति, (जिसे कि उन्होंने वैकुण्ठ नारायण कहा है), की समकालीन निरूपित किया है। और चूँकि लक्ष्मण मन्दिर तथा सोमवशी राजाओं का समय श्री वेंकट रमैया ने 8 वीं शताब्दी माना है। इसीलिए उन्होंने इस चतुर्मुख लिंग का समय भी 8 वीं शताब्दी निश्चित किया है।³

1. खड्गहरी का वैभव, पृ. 356

2. ज. आ. इ. हि. जिल्द 40 भाग 1 पृ. 159

3. ज. आ. इ. हि. जिल्द 40 भाग 1 पृ. 159

परन्तु अध्याय तीन में ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर विचार करते समय यह व्यक्त किया गया है कि कदाचित् प्रो. मिराशी का मत अधिक तर्क संगत है जिसके अनुसार सोमवंशियों का समय 7 वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध और 6 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध रहा है। इस दृष्टिकोण से इस लिंग का समय भी तदनुसार ही रखना अधिक तर्क संगत होगा।

चतुर्मुख लिंग का निचला भाग छेनी द्वारा काटा गया और खुरदुरा है अतः श्री वेंकट रमय्या का विचार है कि कदाचित् यह प्रतिष्ठापित किया गया अथवा नहीं यह अनिश्चित है। संबंधित ग्रन्थों के वर्णनों एवं मूर्ति-विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर उन्होंने चार मुखों में से एक को जो पूर्व की ओर रहता है तत्पुरुष या महादेव का है बताया है जो कि वायु का प्रतीक है। दक्षिण की ओर का मुख अधोर या भैरव का है, जो अग्नि का प्रतीक है। पश्चिम की ओर का सद्योजात या नन्दिबक्त्र है जो कि पृथ्वी का प्रतीक है और उत्तर की ओर का मुख वामदेव या उमावक्त्र का है जो जल का प्रतीक है।

इसके अतिरिक्त सिरपुर स्थित इस संग्रहालय में संग्रहीत प्रतिमाओं में से कुछ बौद्ध और जैन धर्म की भी हैं। इस संग्रह में एक वृक्ष के नीचे शिशु के साथ खड़ी अम्बिका की पूर्ण आकृति तथा चीते एवं द्वारपाल के मध्य द्वन्द्व युद्ध का प्रदर्शन करने वाली मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त आखेट के दृश्यों वाली कुछ प्रतिमाएं एवं सूर्य के रथ के प्रदर्शन संबंधी प्रतिमाएं विशेष हैं। संग्रहालय की इन मूर्तियों को अतिरिक्त लक्ष्मण मन्दिर से प्राप्त विष्णु की श्याम पत्थर पर उत्कीर्ण खंडित प्रतिमा भी शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रायपुर के संग्रहालय में सिरपुर से प्राप्त अनेकों पांडुकालीन, कल्चुरी, कालीन एवं गौड़ कालीन प्रतिमायें संग्रहीत हैं।

बेगलर ने अपनी रिपोर्ट में मन्दिरों के भग्नावशेषों का वर्णन करते समय अनेकों मूर्तियों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त रायकेरा जलाशय के पश्चिमी तट पर स्थित देवी के मन्दिर एवं अन्य स्थानों पर अनेकों मूर्तियाँ हैं। जिनमें से महिषासुर मर्दनी तथा वज्रयान और तांत्रिक नग्न मूर्तियाँ भी हैं। डा. एम. जी. दीक्षित को उत्खनन स्थलों से (आनन्द प्रभुकुटी विहार एवं विहार क्रमांक 1 से 5) कुछ शैव धर्म की छोटी एवं साधारण कोटि की मूर्तियाँ मिली थीं जिनमें महिषासुरमर्दनी, शिव पार्वती एवं गणेश की मूर्तियाँ प्रमुख हैं। जिनके आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि ये मूर्तियाँ लगभग 10 वीं और 11 वीं शताब्दी की हैं तथा यह सिद्ध करती हैं कि उस समय मूर्ति कला का स्तर शैवों के युग में गिर चुका था।

धातु प्रतिमायें :- वैष्णव और शैव धर्मों के साथ साथ सिरपुर महायान बौद्ध धर्म का एक प्रख्यात केन्द्र था। त्वेन सांग की यात्रा विवरण से भी स्पष्ट होता है कि दक्षिण कोशल की राजधानी में लगभग 100 संघाराम थे जिनमें लगभग 10,000 भिक्षु थे।¹

परन्तु ह्वेश साँग द्वारा वर्णित राजधानी की स्थिति विवादास्पद है। फिर भी सिरपुर में अनेकों की संख्या में प्राप्त बौद्ध प्रतिमायें एवं अभिलेखीय उल्लेख इस बात का प्रमाण हैं कि प्राचीन सिरपुर सातवीं शताब्दी में महायान बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र था और साथ ही साथ बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण स्थल भी। सिरपुर में प्राप्त धातु प्रतिमायें एवं सुनारी के औजार उक्त तथ्य के साक्षी हैं कि नालन्दा के समान श्रीपुर भी कला का सृजनात्मक केन्द्र था।

सिरपुर में प्राप्त धातु प्रतिमायें कला एवं शिल्प की दृष्टि से अद्वितीय हैं। इन मूर्तियों का निर्माण भी मन्दिरों में पूजा हेतु किया जाता था जैसा कि आनन्द प्रभु कुटी विहार में प्राप्त सुनारी के औजारों से विदित होता है।¹

ऐसा कहा जाता है कि 1939 में लक्ष्मण मन्दिर के समीप पत्थर खोदते समय श्रमिकों को अचानक इन मूर्तियों का एक विशाल संग्रह प्राप्त हो गया। ये मूर्तियाँ लगभग 60 थीं और लगभग 6 वर्ष तक ये भीखम बाबा नामक पुजारी के पास पड़ी रही और तत्पश्चात् वे 1945 में स्थानीय मालगुजार श्री श्याम सुन्दरलाल के अधिकार में आ गईं। उनमें से जो मूर्तियाँ गन्धेश्वर मन्दिर के तत्कालीन पुजारी श्री मंगल गिरि गोस्वामी को दे दीं जो बाद में मुनि कान्ति सागर को प्राप्त हो गईं। इन मूर्तियों संबंधी विवरण श्री मुनि कान्ति सागर ने अपनी पुस्तक “खंडहरों का वैभव” में प्रकाशित करवाया है। इन मूर्तियों में से तीन मूर्तियाँ श्री मुनि कान्ति सागर को प्राप्त हुयी थीं जिसमें से एक उन्होंने भारतीय विद्याभवन बम्बई भेज दी थी।²

इसके पश्चात् दो मूर्तियाँ नागपुर के संग्रहालय में तथा और चार रायपुर संग्रहालय में अवाप्त हुयीं। सिरपुर में प्राप्त उक्त विशाल संग्रह की प्रतिमायें अन्य व्यक्तियों के अधिकार में चली गईं। 1956 में डा. एम. जी. दीक्षित ने पुनः कुछ व्यक्तियों से पाँच प्रतिमायें प्राप्त की जो रायपुर संग्रहालय में भेज दी गईं। कुछ प्रतिमायें डा दीक्षित को सिरपुर के उत्खनन में भी प्राप्त हुयीं।

प्राप्त प्रतिमाओं से ज्ञात होता है कि नालन्दा की भाँति सिरपुर में भी 7 वीं और 8 वीं शताब्दी में धातु प्रतिमाओं का महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित था। श्री मुनि कान्ति सागर को सिरपुर में ऋणभनाथ की एक नवगृहयुक्त धातु प्रतिमा प्राप्त हुई थी और सिरपुर के निकट वर्ती फुसेरा के जंगलों में एक विष्णु की ताम्र प्रतिमा प्राप्त हुई है। (रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत) उससे यह स्पष्ट होता है कि कदाचित् बौद्ध प्रतिमाओं के साथ जैन और ब्राह्मण धर्म की भी धातु प्रतिमाओं का निर्माण सिरपुर में होता था।

1. बुलेटिन आ. प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम भाग 5 पृ. 8

2. बुलेटिन आक प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम भाग 5 पृ. 2

सिरपुर की धातु प्रतिमाओं की शैली नालन्दा से प्रभावित है। सिरपुर के पांडुवंशी राजाओं का संबंध मगध से था। यह पहले ही बताया जा चुका है। सिरपुर की सभी धातु प्रतिमाएँ ढाल कर बनाई गई हैं। शरीर के विभिन्न अलंकारों तथा जटाजूट एवं यज्ञोपवीत आदि को अलग से बनाकर मूर्ति में संलग्न किया गया है। प्रतिमाओं के बैठने की चौकी भी अलग से बनाकर जोड़ी गई है। पूरी प्रतिमा में सोने का मुलम्मा, आखों में चाँदी का जड़ाव, बालों में काला रंग और होठों में ताँबे की लाली चढ़ाई गई है। नालन्दा, कुकिहार-अकोट, और बसन्तगढ़ में प्राप्त कुछ प्रतिमाओं की आँखों में चाँदी का जड़ाव पाया गया है।

इस बात में कठिनता से कोई सन्देह होगा कि इन मूर्तियों का सिरपुर में स्थानीय निर्माण होता था। 1955 से डा. एम.जी. दीक्षित द्वारा किये गये विहारों के उत्खनन में उन्हें सुनारी के जो औजार प्राप्त हुये वे उनके अनुसार संभवतः इन मूर्तियों के निर्माण में ही प्रयुक्त होते थे।¹ डा. एम.जी. दीक्षित को उत्खनन में निम्नलिखित औजार प्राप्त हुये — धातु गलाने की घरिया, सोना कसने की कसोटी जिसपर स्वर्ण को परखने के चिन्ह हैं, छोटा हथौड़ा, एक जोड़ा चिमटा जिसके छोर कमल-कली के आकार के हैं, दो कैंचियाँ और एक तार पीडो की आकृति की लौहछड़ जिस पर कि वक्र-स्वर्ण वस्तुओं को आकार दिया जाता था। मुख्य मन्दिर के दक्षिणी बरामदे में चूनम-रेखाओं से युक्त एक चौकोर गड्ढे में ये वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं। बुद्ध की अर्द्धनिर्मित मूर्ति एवं बालुकायुक्त अधिष्ठान इस बात का प्रमाण है कि स्वर्णकारने अवश्यमेव कम से कम अस्थायी रूप से इस विहार में कार्य किया था।² डा. दीक्षित का आगे कहना है कि तीन समीपवर्ती विहारों में स्थित मध्यवर्ती कमरे में एक ईंटों का बना अधिष्ठान होता था जो कि इन धातु एवं प्रस्तर की प्रतिमाओं को रखने के लिये ही बनाया जाता था।

सिरपुर में प्राप्त धातु प्रतिमाओं में तारा की प्रतिमा जो कि भारतीय विद्याभवन बम्बई भेजी गई थी, सर्वोत्तम है। वास्तव में यह मूर्ति (चित्र फलक 9) इस क्षेत्र में विकसित धातु-मूर्तिकला का प्रतिनिधित्व करती है। इस मूर्ति का विस्तृत विवरण श्री-मुनि कान्त सागर ने अपनी पुस्तक "खण्डहरों का वैभव" में किया है।³ उनके अनुसार इसकी उँचाई अनुमानतः 1-1/2 फीट से कम नहीं है। चौड़ाई लगभग 1 फुट रही होगी। यह मूर्ति सप्त धातुमय है। परन्तु स्वर्ण का अंश अधिक जान पड़ता है। परिवार के मध्य भाग में तारा विद्यमान है। दक्षिण कर में सीताफल की आकृति वाला फल दिखाई पड़ता है। वामहस्त आशीर्वाद सूचक है। पद्म भी स्पष्ट है। अंगुष्ठ और

1. बुलेटिन आफ प्रिन्स आफ वेल्स म्युनियम आफ वेस्टर्न इण्डिया नं. 5 पृ. 9

2. वही

3. खंडहरों का वैभव' पृ. 293

कनिष्ठ में अंगूठी है। दोनों हाथों में दो दो कंकण और बाजूबन्द हैं। गले में हंसुली और माला हैं; जिनकी कला अत्यंत सूक्ष्म है। करधनी अत्यन्त आकर्षक है। केशविन्यास गुप्त-कालीन कला स्मरण दिलाता है। बालों में भी आभूषण एवं फूलों का गुंथन है। कर्ण में भी कुण्डल और पुष्प हैं। आँख चाँदी की बनाकर ऊपर से जड़ दी गई हैं। वक्ष की चोली पर चाँदी के फूल जड़े हैं। साड़ी का परिधान भी है। मुखमुद्रा, शरीर की सुन्दरता एवं शिल्प का सूक्ष्म प्रदर्शन अद्वितीय है।

मूर्ति के परिकर से इसका कलात्मक मूल्य दूना हो जाता है। इसके कलाकार की व्यापक चितन और निर्माण शक्ति का गंभीर परिचय उसमें एक अंग से मिलता है। 'परिकर' के निम्न भाग में कमल की शाखायें पुष्प और पत्र विखरे पड़े हैं। कमल पत्र पर दाईं ओर जाँघिया पहने एक भक्त हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा है। उसके पीछे और सामने वाले भाग में जाँघिया पहने एक व्यक्ति के हाथ में पूजोपकरण हैं। भक्त के समीप चौकी सदृश भाग पर जलयुक्त कलश, धूपदान और पंचदीप वाली आरती पत्र है। प्रतीत होता है कि परिकर में पूरे मंदिर की कल्पना को रूप दे दिया गया है। मुख्य आसन के दोनों ओर बैठे हुये हाथी हैं, जिनके गडस्थल पर पंजे जमाये हुये सिंह खड़े हैं। पट्टिका के निम्न भाग में मुक्ता की मालायें वन्दनवार के समान हैं। दोनों स्तंभों के बीच बोधिवृक्ष की पत्तियाँ हैं। यह तोरण श्री मुनि कान्ति सागर के अनुसार साँची के तोरण-द्वार की अविकल प्रतिकृति है। तोरण के ऊपर मध्यभाग में भगवान बुद्ध ध्यानमुद्रा में हैं।

तारा की इस प्रतिमा के अतिरिक्त श्री मुनि कान्ति सागर ने अपनी पुस्तक 'खंडहरों का वैभव (पृष्ठ 289-91) में कुछ अन्य धातु प्रतिमाओं का भी वर्णन किया है जो कि सभी बौद्ध धर्म की हैं। इसके अतिरिक्त डा. एम. जी. दीक्षित ने प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम बुलेटिन नं. 5 में उत्खनन द्वारा प्राप्त कुछ धातु प्रतिमाओं का वर्णन किया है। जिनमें से बुद्ध शाक्यमुनि की चार प्रतिमायें उन्हें निचले विहार के उत्खनन में मध्यवर्ती प्रांगण में प्राप्त हुयी थीं। इनमें से एक मूर्ति के पीछे प्रभावली पर बौद्ध मंत्र 'ये धमहितु' उत्कीर्ण है। पृष्ठ भाग पर "द्रोणादित्य" का नाम उत्कीर्ण है जो कि अवश्यमेव निर्माणकर्ता कलाकार था; जो कि अन्य मूर्तियों पर उत्कीर्ण पाया गया है। उक्त दो मूर्तियों में दो रायपुर संग्रहालय की हैं। इसके अतिरिक्त 1939 में प्राप्त अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि, संजुश्री तथा तारा की अन्य प्रतिमाओं का वर्णन भी डा. एम. जी. दीक्षित ने किया है। (वही पृष्ठ 4-8) इन मूर्तियों में से निम्नलिखित ग्यारह मूर्तियाँ रायपुर संग्रहालय की हैं।

- 1-2. भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध
3. वरद मुद्रा में बुद्ध
4. अवलोकितेश्वर पद्मपाणि
- 5,6,7 पद्मपाणि

8. वज्रपाणि

9-10. मंजुश्री

11. तारा

इसके अतिरिक्त स्थानक विष्णु, जो कि सिरपुर के समीप जंगल से प्राप्त हुए हैं भी रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है। परन्तु खेद का विषय है कि इन प्रतिमाओं में से पाँच प्रतिमायें संग्रहालय से चोरी चली गई हैं।

सिरपुर में प्राप्त इन धातु प्रतिमाओं की शिल्प शैली कई प्रकार से नालन्दा की धातु प्रतिमा शैली से मिलती जुलती है। और इसी के आधार पर डा. एम. जी. दीक्षित का अनुमान है कि सिरपुर की यह कला बिहार स्थित नालन्दा से ही प्रेरित है। इन मूर्तियों की एक विशेषता यह है कि अधिकांश मूर्तियों में अभिलेख प्राप्त होता है जिससे उनके काल-निर्धारण में बड़ी सरलता होती है। डा. एम. जी. दीक्षित के अनुसार लिपि शास्त्र एवं शिल्प शैली के आधार पर इन मूर्तियों का समय गुप्तकाल के सप्तम से आठवीं शताब्दी के पूर्व चतुर्थांश में निर्धारित किया जा सकता है।¹ काईयुवान काल (713-741 ई.) का एक चीनी सिक्का उसी (चित्र फलक 11) मन्दिर में पाया गया है जिसमें कि धातु प्रतिमाओं का संग्रह पाया गया। और इस प्रकार यह प्रमाण भी इन मूर्तियों की तिथि निर्धारण में सहायक है।² इन मूर्तियों के शिल्पी द्रोणादित्य की कला को देखकर यह सिद्ध होता है कि वह एक उच्चस्तर का शिल्पी था। उसके कार्य की विशेषता मूर्ति के मुख-भाग के उत्तम ढलाई में शरीर के विभिन्न अवयवों के वैभव पूर्ण शिल्प एवं अलंकरण संबंधी सूक्ष्मयता के प्रदर्शन में प्रतिलक्षित होती है। इस युग में सिरपुर की कला अत्यन्त उच्च स्तर पर पहुँच चुकी थी।

अन्य पुरातात्विक अवशेष :- सिरपुर के भग्नावशेष पुरातात्विक वस्तुओं के संबंध में इतने धनी हैं कि पग पग पर उनकी प्राप्ति होती है। प्रस्तर एवं धातु मूर्तियों के अतिरिक्त सिरपुर में हुए उत्खनन में मृण्मय मूर्तियाँ तथा वस्तुएं शिला पट्ट, मिट्टी की मुद्राएं, विभूति पट्ट, सिक्के, अभिलेख तथा अन्य विभिन्न प्रकार की दैनिक उपयोग की वस्तुएं भी प्राप्त हुई हैं।

सिरपुर उत्खनन से प्राप्त मृण्मय मूर्तियों के उदाहरण रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत हैं। उनमें सबसे बड़ी और सबसे महत्वपूर्ण एक बुद्ध की धर्म-प्रवचन मुद्रा की प्रतिमा है। केश घुंघराले एवं उष्णीष बुद्ध है तथा प्रतिमा प्रभामंडलयुक्त है। इसके अतिरिक्त हाथी, घोड़ा, भैंस, भेड़, हिरण, बैल और स्त्रियों की मृण्मय मूर्तियाँ भी उत्खनन में प्राप्त हुई हैं।

1. बुलेटिन आफ प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम नं. 5, पृ. 1-11

2. वही

जो रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय वैल की मूर्तियाँ हैं जो कि ठीक उसी आकृति की जैसी कि आज भी छत्तीसगढ़ में पोला पर्व के अवसर पर बच्चों के खेलने हेतु बनाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टी के बने हुए छोटे छोटे गोलाकार दीप भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं। मिट्टी के मनके भी उल्लेखनीय हैं। ये सभी वस्तुएं रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

सिरपुर के उत्खनन में मिट्टी की विभिन्न आकार की अनेकों मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं जो कि रायपुर संग्रहालय से प्रदर्शित हैं (चित्र फलक 8) प्राचीन ग्रन्थों जैसे 'हर्ष चरित' और 'दिव्यावदान' में पाटल मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है, जो कि प्राचीनकाल में प्रचलित थीं। ऐसी पाटल मुद्राएँ नालन्दा में बहुत प्राप्त हुई हैं, जिन पर वहाँ के बड़े बड़े विहारों के नाम लिखे हैं। उल्लेखनीय है कि सिरपुर की बौद्ध स्थापत्य एवं शिल्प कला पूर्ण रूपेण नालन्दा से प्रभावित थीं। ये मिट्टी की मुद्राएँ भी अनुकरण करती हुई प्रतीत होती हैं। सिरपुर से प्राप्त मिट्टी की कुछ मुद्राएँ अण्डाकार हैं और कुछ गोल हैं। इनमें बुद्ध और बोधिसत्व की प्रतिमाएँ बनी हैं तथा बौद्धों का बीज मंत्र (ये धर्मा...) आदि लिखा हुआ है। एक मुद्रा में बुद्ध भूमिस्पर्श मुद्रा में बैठे हुए हैं। दूसरे में अवलोकितेश्वर सत्रिभंग मुद्रा में खड़े हैं। एक अन्य मुद्रा जो कि बड़े आकार की है, उस पर द्वादश भुजा वाली अवलोकितेश्वर की प्रतिमा है। इन मुद्राओं का समय 7 वीं 8 वीं शताब्दी निरूपित किया गया है। कुछ अन्य मुद्राएँ ऐसी हैं जिन पर प्रतिमा नहीं है, अपितु केवल मंत्र लिखा हुआ है। कुछ मुद्राओं पर "ये धर्मा" आदि मन्त्र और कुछ पर "धारिणी मन्त्र" लिखा है जो कि पर्याप्त लम्बा है। "धारिणी मन्त्र" तत्कालीन तान्त्रिक कर्मकाण्ड का प्रतीक हो सकता है। इस प्रकार की धारिणी मन्त्र की मुद्राएँ दो भागों में हैं। जिन्हें आमने सामने रखकर जोड़ा जा सकता है। परन्तु लघु आकार की इन मुद्राओं में अत्यन्त सीमित स्थल पर इतने छोटे अक्षरों में मन्त्र उत्कीर्ण है कि इसका पढ़ना अत्यन्त कठिन है।

इन मिट्टी की मुद्राओं के अतिरिक्त 1956 में एक लाल बलुये पत्थर का मुद्रांक भी सिरपुर में प्राप्त हुआ था। जिस पर नन्नराज का नाम उत्कीर्ण है।¹ परन्तु यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है कि यह कौन नन्नराज था। पांडुवशी राजाओं में दो नन्नराज थे— एक महाशिव तीवर देव का पिता और दूसरा उसका पुत्र। चूंकि तीवर देव के पुत्र नन्नराज द्वितीय का एक अभिलेख श्रीपुर से प्रसारित किया गया था। अतः इस मुद्रांक का नन्नदेव द्वितीय से संबंधित होना अधिक संभावित है।

सिरपुर के उत्खनन में बौद्ध विहार संख्या 1 से 5 में एवं अन्य विहारों में डा. एम. जी. दीक्षित को अनेक ऐसे छोटे शिला पट्ट मिले थे, जिन पर विभिन्न देवताओं जैसे शिव,

1. एपी. इ. 31 पृ. 32 (याद टिप्पणी)

पार्वती, दुर्गा, गणेश, सूर्य और विष्णु आदि की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। इनका समय 12वीं शताब्दी में कल्चुरी राजाओं का काल निरूपित किया गया है इनमें से कुछ पट्ट रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। कल्चुरीकालीन शैव मन्दिरों में पूजा के समय प्रयुक्त होने वाले विभूति पट्ट भी सिरपुर उत्खनन में से प्राप्त हुए हैं। जो कि रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत एवं प्रदर्शित हैं। इनमें से कुछ चौकोर और कुछ गोल हैं। इन पर अनेक प्रकार के अलंकरण एवं कमल, शंख, मछली, पक्षी बैल और हाथी आदि की मांगलिक आकृतियाँ बनी हैं।

दैनिक उपयोग की वस्तुएँ :- सिरपुर के उत्खनन कार्य में वहाँ के निवासियों की विभिन्न प्रकार की दैनिक उपयोग की वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। जो कि रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत हैं। आनन्द प्रभु विहार का उत्खनन करते समय उत्खननकर्ता को एक कमरे में सुनार के औजारों का पूरा सेट प्राप्त हुआ।¹ जिनमें चिमटियाँ, चिमटे छोटी हथौड़ी एक तिपाई और कसौटी—जिस पर सभवतः सोना परखा गया होगा, सुनहरी रेखाओं के साथ सुरक्षित रूप में प्राप्त हुआ।² इसके अतिरिक्त कृषि कार्य, लुहार और कुम्हार के औजार भी विहार में प्राप्त हुये हैं। पूजा के धार्मिक उपादानों के साथ ग्रह कार्यों में आने वाले पदार्थ भी उपयुक्त हुये हैं। डा. एम.जी. दीक्षित के अनुसार उन्हें, एक कमरे में, जो कि निस्सन्देह मठ का रसोईघर था, कढ़ाई, तवा, चम्मचें, करछी, मथानी और एक छोटा-सा सरोता भी उपलब्ध हुआ। दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तुओं में स्कन्दाहत (SPRING-PUSH) की किस्म का ताला जो कि साँची और नालन्दा के मठों में भी मिला है उल्लेखनीय है। लोहे की घटियाँ, खूटियाँ, दरवाजे के कब्जे, जजीरें चटकनियाँ और द्वार की साँकल भी प्राप्त हुई हैं। मठ की छत में अच्छी इमारती लकड़ी का प्रयोग था। इसीलिये लगभग 300 की संख्या में विभिन्न किस्मोंनव आकारों में लोहे की कीलें भी मिली हैं। प्रत्येक कमरे में दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ तथा आटे की चक्की, सिलबट्टा और कहीं कहीं ऊखल भी मिला है। बरामदों के कोने में बड़े बड़े घड़े रख कर उचित पानी की व्यवस्था की जाती थी। और आलों में मिट्टी के दीपक रखकर बरामदों में प्रकाश किया जाता था। मठ में विभिन्न प्रकार के आयुध भी प्राप्त हुये हैं।³ इसके अतिरिक्त विहारों में लाल रंग के मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े भी प्राप्त हुये हैं जो कि दैनिक उपयोग के बर्तनों के ही थे। इसके साथ ही प्राचीन नगर स्थल एवं विहार तथा दुर्ग के उत्खनन में काँच की चूड़ियों के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं।

सिक्के :- सिरपुर के उत्खनन में केवल तीन प्रकार के सिक्कों की उपलब्धि हुई है और तीनों 1955-56 में ही प्राप्त हुये हैं।

1. इ. आक्यालजी 1954-55 पृ. 24
2. शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. 189
3. शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ पृ. 190-191

- 1- प्रसन्नमात्र का सिक्का (स्वर्ण)
- 2- काई युवान का चीनी सिक्का (चित्र फलक)
- 3- कल्चुरीकालीन रत्नदेव के सिक्के ।

प्रसन्नमात्र का सिक्का :- यह सिक्का प्राचीन नगर स्थल का उत्खनन करते समय डा. एम.जी. दीक्षित को निम्नतम स्तरों से प्राकृतिक मिट्टी के ऊपर प्राप्त हुआ, यह सिक्का भग्नावस्था में है । प्रसन्नमात्र शरभपुरीय वंश का राजा था जो कि संभवतः पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम एवं 6 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हुआ । इस राजा का विस्तृत विवरण अध्याय तीन में हो चुका है । प्रसन्नमात्र के इस प्रकार के स्वर्ण सिक्के दक्षिण कोशल के अन्य स्थानों से भी प्राप्त हो चुके हैं । श्री लोचन प्रसाद पांडे ने प्रसन्नमात्र के सिक्के का वर्णन इस प्रकार किया है :- “सिक्का गोल है एवं इसके एक ओर अभिलेख है । दूसरी ओर का भाग सादा है । सिक्के पर का आख्यान श्री प्रसन्नमात्र पेटिका शीर्ष अक्षरों में पढ़ा गया है । इसके ऊपर आवक्ष है जिसके एक ओर चक्र और दूसरी ओर शंख है और आख्यान के नीचे गदा प्रतीत होने वाली वस्तु का शीर्ष भाग है । सिक्का चाँदी का है परन्तु इसके ऊपर सोने का धूमिल रंग चढ़ा है “सिक्के पर का आवक्ष लक्ष्मी अथवा गरुड़ हो सकता है ।” उल्लेखनीय है कि शरभपुरीय राजा वैष्णव थे । परन्तु उक्त सिक्के को श्री एल. पी. पाण्डे ने चाँदी का बताया है जबकि अन्य विद्वानों ने इसे सोने का सिक्का माना है ।

काई युवान का चीनी सिक्का :- (चित्र फल 11) डॉ. एम. जी. दीक्षित को यह सिक्का विहार क्रमांक 1-5 के स्थल के उत्खनन करते समय प्राप्त हुआ था ।¹ यह चीनी राजा काई युवान के समय का है जिसका समय 713-41 ई. था । यह एक छोटा-सा ताँबे का गोल सिक्का है इसके मध्य में एक चौकोर छिद्र है । यह इस बात का प्रमाण है कि चीनी यात्री संभवतः सिरपुर के इस बौद्ध केन्द्र में आकर्षित होकर आते थे ।

कल्चुरी कालीन रत्नदेव के सिक्के :- प्राचीन नगर स्थल का उत्खनन करते समय तीसरे काल के स्तर से एक सौ छः ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए । ये सिक्के कल्चुरी वंश की रत्नपुर शाखा के रत्नदेव नामक राजा के हैं ।² कल्चुरी वंश की इस शाखा में केवल चार राजाओं के सिक्के (चाँदी और ताँबा) दक्षिण कोशल में प्राप्त होते हैं जिनके नाम हैं रत्नदेव, पृथ्वी देव, जाजल देव और प्रताप मल्ल । इनके ताँबे के सिक्के अधिकतर अत्यन्त घिसी हुई दशा में हैं । जिनपर अग्र भाग पर राजा का नाम “श्री मद्रत्न (भद्र-रत्न) देव” लिखा रहता है । परन्तु सिक्के घिस जाने के कारण पूरा नाम पढ़ना कठिन है ।

1. इ. आर्कियालॉजी 1955-56 पृ. 27

2. वही

पर बिन्दुओं के माध्यम से निर्मित अस्पष्ट आकृति रहती है जिसे विद्वानों ने घोड़ा, हाथी अथवा हनुमान की आकृति माना है।

अभिलेख सिरपुर में शरभपुरीय एवं पाण्डुवंशीय राजाओं के काल के निम्नलिखित अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

1- सुदेवराज का सिरपुर का ताम्रपत्र वर्ष-7

शरभपुरीय राजाओं के वंश का केवल एक ताम्रपत्र अभिलेख सिरपुर में प्राप्त हुआ है¹ जो कि इस वंश के राजा सुदेवराज का है। यह अभिलेख उसके राज्य के 7 वें वर्ष में शरभपुर से प्रसारित किया गया था। यह अभिलेख तीन ताम्रपत्रों में है। अभिलेख की लिपि पेटिका शीर्ष ब्राह्मी है, जिसे कि प्लीट ने मध्य भारतीय लिपि कहा है।² इसमें एक गांव के पूर्व में दिये हुए दान का पुष्टीकरण है। सुदेवराज का समय प्राप्त प्रमाणों के आधार पर 6वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध अनुमानित किया गया है। अतः इस अभिलेख का समय लगभग वही होगा।

2- लक्ष्मण मन्दिर अभिलेख (चित्रफलक 10)

यह अभिलेख लक्ष्मण मन्दिर का मलवा साफ करते समय पाया गया था।³ यह बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण है और सिरपुर में प्राप्त समस्त अभिलेखों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसकी चौड़ाई 114 सेंटी मीटर और ऊँचाई 68 सेंटी मीटर है। इसकी लिपि 6वीं शताब्दी की कुटिल अक्षरों वाली नागरी है। भाषा संस्कृत है (इस अभिलेख में महाशिव गुप्त की माता वासटा जो कि मगधराज सूर्यवर्मा की पुत्री थी, द्वारा हरि (विष्णु) का मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है। यह अभिलेख सम्प्रति रायपुर संग्रहालय में अभिलेख कक्ष में प्रदर्शित है। महाशिवगुप्त बालार्जुन का समय 7वीं शताब्दी का पूर्वार्ध और 6वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में रखा जाता है। अतः इस अभिलेख का समय 7वीं शताब्दी का प्रारंभ माना जा सकता है। इस अभिलेख के रचयिता ईशान (चित्तातुरांक) नामक कवि था। सम्पूर्ण प्रशस्ति संस्कृत के सुन्दर छन्दों में रचित है।

3- बालार्जुन के समय का सिरपुर अभिलेख

यह अभिलेख डा. एम. जी. दीक्षित को सिरपुर स्थित आनन्द प्रभुकुंटी विहार का उत्खनन करते समय विहार के उत्तरी बरामदे में धरातल से आठ फीट नीचे 2 जनवरी 1955 को प्राप्त हुआ था।⁴ कोमल बलुये पत्थर पर उत्कीर्ण यह अभिलेख 14 इंच

1. एपी. इ. भाग 31 पृ. 103

2. का. इ. इ. भाग 3 पृ. 18-19

3. एपी. इ. भाग 11, पृ. 184

4. वही, भाग 31 पृ. 197

चौड़ा साढ़े 8 इंच ऊँचा और लगभग 3 इंच मोटा है। इस अभिलेख के पीछे छेनी के चिन्ह हैं जिससे प्रतीत होता है यह जिस दीवाल के समीप पाया गया है उसी में प्रतिष्ठापित था।¹ अभिलेख में 14 पंक्तियाँ हैं। इसकी लिपि 7वीं 8वीं शताब्दी में प्रचलित प्रारंभिक नागरी है। भाषा संस्कृत है। इस अभिलेख में एक भिक्षु आनन्द प्रभु द्वारा बालार्जुन के राज्यकाल में एक विहार बनवाने एवं विहार निवासी भिक्षुओं के लिये एक सत्र स्थापित करवाने का उल्लेख है। यह अभिलेख भी बालार्जुन के समय का है।

4-गन्धेश्वर मन्दिर अभिलेख

सिरपुर स्थित गन्धेश्वर मन्दिर भोंसलों के काल में प्राचीन अवशिष्ट सामग्री के माध्यम से पुनर्निर्मित किया गया था। फलस्वरूप अस्तव्यस्त रूप में प्राचीन अभिलेख भी इस मन्दिर में यत्र तत्र लगा दिए गये हैं। कर्निघम ने² गन्धेश्वर मन्दिर में लगे हुए इस प्रकार के 6 अभिलेखों का वर्णन किया है। परन्तु उनमें से कुछ अभिलेख गन्धेश्वर मन्दिर के नहीं हैं। डॉ. हीरालाल के मतानुसार केवल 2 या 3 ही गन्धेश्वर मन्दिर से संबंधित कहे जा सकते हैं।³ फिर भी वर्तमान परिस्थिति में उन्हें गन्धेश्वर मन्दिर के अभिलेख ही कहा जाता है। ये सभी अभिलेख कुटिल नागरी लिपि में प्रस्तर पर उत्कीर्ण हैं। भाषा संस्कृत है (7 वीं 8 वीं शताब्दी)। सभी अभिलेख शिवगुप्त बालार्जुन के राज्य-काल के हैं।

(क) यह अभिलेख मन्दिर में प्रवेश करते ही दाहिनी ओर की कुर्सी पर लगा है। इस अभिलेख में राजा शिव गुप्त की एक प्रजा जेजुरक के द्वारा गन्धेश्वर की पूजा के लिए पुष्पों की भेंट की व्यवस्था किये जाने का उल्लेख है।⁴

(ख) दूसरा अभिलेख पहले अभिलेख के नीचे है। इस अभिलेख में शिव गुप्त की पूर्ण वंशावली का उल्लेख है। जो कि उदयन से प्रारम्भ होती है। इसके अतिरिक्त नामदेव और केशव नामक दो व्यक्तियों द्वारा श्रीपुर के निवासी मालियों से शिव पूजा के लिए कुछ धन एकत्रित किए जाने का उल्लेख है।⁵

(ग) तीसरा अभिलेख प्रथम अभिलेख के ऊपर है। इस अभिलेख का प्रथम भाग टूट गया है। अतः अभिलेख अपूर्ण हैं। अभिलेख के रचनाकार एवं उत्कीर्ण करने वाले के नाम अवशिष्ट हैं। रचनाकार तारदत्त का पुत्र सुमंगल था और उत्कीर्ण करने वाला सूत्रधार ऋषि गण था।⁶

1. ए.पी.इ. भाग 31 पृ. 197

2. आ. स. रि. भाग 17, पृ. 27

3. इंसक्रिप्शन्स इन सी. पी. एण्ड बरार पृ. 98

4. वही

5. वही

6. वही

(घ) चौथा अभिलेख मन्दिर के प्रवेश द्वार के समीप फर्श पर एक प्रस्तर शिला पर उत्कीर्ण है। यह अभिलेख बालार्जुन के नाम का उल्लेख करता है जो कि शिव गुप्त का दूसरा नाम था। इसमें भी पुनवहट्टम के मालियों द्वारा शिव के लिए फूलों के उपहार का उल्लेख है।

(ङ) पाँचवा अभिलेख महा मंडप के एक स्तंभ पर तीन ओर उत्कीर्ण है। ये लम्बे अभिलेख हैं। परन्तु इसके अक्षर अधिकांशतः अस्पष्ट हैं। इस अभिलेख में शिवगुप्त द्वारा बालकाल में ही धर्नुविद्या में निष्णात होने से बालार्जुन की उपाधि धारण करने का उल्लेख है। श्री मंगल नामक एक व्यक्ति का भी उल्लेख है जो कि संभवतः प्रशस्ति रचने वाले का नाम है और पूर्व के अभिलेखों का सुमंगल हो सकता है।¹

(च) छठा अभिलेख भी उपरोक्त अभिलेख के सामने स्थित एक अन्य स्तंभ पर उत्कीर्ण है। पश्चिमी पाश्वर् में 54 पंक्तियों का विस्तृत अभिलेख है परन्तु अधिकांश अभिलेख अत्यन्त जीर्ण हो चुका है। केवल बालार्जुन का नाम पढ़ा जा सकता है।²

उपरोक्त गन्धेश्वर मन्दिर के सभी अभिलेख महाशिव गुप्त बालार्जुन के समय के हैं और लगभग सब में शिव की अम्यर्चना का ही उल्लेख है।

5-सिरपुर नदी द्वार अभिलेख

यह अभिलेख गन्धेश्वर मन्दिर से महामदी जाने के लिए बनाये गये द्वार पर पाया गया था। इसलिये इसे डॉ. हीरा लाल ने नदी द्वार अभिलेख की संज्ञा दी है।³ यह लेख सात आठ सेंटी मीटर चौड़ी और 31 सेंटी मीटर ऊँची प्रस्तर शिला पर उत्कीर्ण है। इसमें ऊपर का दाहिना और नीचे का बायाँ भाग खंडित हो गया है। इसमें चौदह पंक्तियाँ हैं परन्तु काफी जीर्णविस्थाओं में होने के कारण पूर्ण लेख पढ़ना कठिन है इसकी लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। लिपि 7 वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। इसमें किसी राजकुमार देवनन्दि द्वारा दिये गए दान का वर्णन है। लेख में उत्कीर्ण करने वाले व्यक्ति का नाम “गोष्णा” दिया है। जिसने कि लक्ष्मण मन्दिर अभिलेख भी उत्कीर्ण किया था। अतः यह अभिलेख भी बालार्जुन के समय का प्रतीत होता है। यह अभिलेख रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है।

6- सुरंग टीले से प्राप्त अभिलेख

सिरपुर स्थित सुरंग टीले से लेख प्राप्त हुआ था। कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट (भाग 17 पृष्ठ 27) में इसका उल्लेख किया है। प्रस्तर पर उत्कीर्ण इसकी चौड़ाई

1. इंसक्रिप्शन्स इन सी. पी, एण्ड बरार पृ. 99

2. वही

3. वही पृ. 110

68 सेंटीमीटर और ऊँचाई 40 सेंटीमीटर है। लेख में 19 पंक्तियाँ हैं। लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। अत्यन्त जीर्ण होने से पूरा लेख पढ़ना कठिन है। इसमें मगध राज सूर्य वर्मा का उल्लेख है जिसकी पुत्री वासटा शिवगुप्त की माता थी। इस लेख की 9 वीं पंक्ति में महाशिव गुप्त का नाम मिलता है। लेख को उत्कीर्ण करने वाला शीलादित्य था। यह अभिलेख रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है।

7- बुद्धघोष का सिरपुर के निकट प्राप्त अभिलेख

यह शिला लेख जो कि खंडित दशा में है, सिरपुर समीपवर्ती जंगल में प्राप्त हुआ था। सम्प्रति रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है। इसकी चौड़ाई 52 सेंटी मीटर और ऊँचाई 45 सेंटीमीटर है। इसमें 26 पंक्तियाँ हैं। लिपि नागरी और भाषा संस्कृत है। लिपि 7 वीं 8 वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। यह अभिलेख सिरपुर के किसी बौद्ध विहार से संबंधित प्रतीत होता है।¹ क्योंकि इसमें जिनघोष एवं बुद्धघोष नामक आचार्यों का उल्लेख है, जिन्हें कि किन्हीं ग्रामों का दान दिया गया था।

8- सिरपुर में प्राप्त अत्यन्त घिसा अभिलेख

यह शिला लेख सिरपुर में प्राप्त हुआ था। इस समय यह रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत है। इसकी ऊँचाई 47 सेंटी मीटर और चौड़ाई 55 सेंटी मीटर है। यह अभिलेख इतना अधिक घिसा हुआ है कि इसे कंचित मात्र भी पढ़ना संभव नहीं है।

सिरपुर में अद्यावधि प्राप्त अभिलेखों में केवल एक अखिलेख शरभपुरीय (सुदेव राज) का है। शेष समस्त अभिलेख सोमवंशी राजाओं के हैं। केवल क्रमांक 7 व 8 के संबंध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि सिरपुर में प्राप्त समस्त सोमवंशी अभिलेख महाशिव गुप्त बालार्जुन के ही राज्य काल के हैं। बुद्ध घोष के लेख (क्रमांक 7) की लिपि 7 वीं शताब्दी की प्रतीत होती है। अतः उसका समय भी शिवगुप्त के राज्य काल में ही आता प्रतीत होता है (अन्य अध्यायों में यह देखा जा चुका है कि सिरपुर के अन्य अवशेष भी अधिकांशतः बालार्जुन के राज्यकाल से ही संबंधित हैं। अभिलेखों की यह सामग्री भी इसी तथ्य को अधिक बल देती है। क्योंकि पांडुवश के किसी अन्य राजा का अभिलेख सिरपुर में प्राप्त नहीं हुआ है। केवल नन्न राज के नाम की एक पत्थर की मुद्रा प्राप्त हुई है, जिसका वर्णन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त एक अन्य बात यह भी उल्लेखनीय है कि सिरपुर में प्राप्त समस्त अभिलेख जो कि पांडुवंशीय नरेश बालार्जुन के समय के हैं प्रस्तर शिला पर ही पाये गये हैं। केवल सुदेव राज का अभिलेख (क्र. 1) ताम्र-पत्र पर है। पांडुवंशीय राजाओं ने ताम्र-पत्र भी प्रसारित करवाये थे परन्तु वे अन्य स्थानों पर प्राप्त हुए हैं, सिरपुर में नहीं। एक बात यह भी विशेष है कि समस्त प्रस्तर अभिलेख नागरी लिपि में ही हैं, जबकि

1. उत्कीर्ण लेख पृ. 157

ताम्र-पत्र पेटिका शीर्ष ब्राह्मी में प्राप्त होते हैं। यह नियम सिरपुर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण दक्षिण कौशल में लागू होता प्रतीत होता है। क्या इसका यह अर्थ निकलता है कि पेटिका शीर्ष ब्राह्मी में केवल ताम्र-पत्रों के लिए ही थी ?

भाषा एवं साहित्य—प्राचीन काल में सिरपुर की भाषा और साहित्य के क्षेत्र में क्या स्थिति थी और उसने इस क्षेत्र में कहाँ तक प्रगति की थी इसका पूर्ण अनुमान सिरपुर में प्राप्त अभिलेखों के अध्ययन से लगाया जा सकता है। सिरपुर के पाण्डुवंशी एवं शरभपुरीय राजाओं ने अनेकों ताम्रपत्र और प्रस्तर अभिलेख प्रसारित करवाये थे जिनके विषय की रचना एवं उनके लिपिबद्ध करने के ढंग को देखकर यह प्रतीत होता है कि उस समय की भाषा अत्यन्त उच्चकोटि की संस्कृत थी एवं राज्य में अनेक विद्वान कवियों तथा साहित्यकारों को प्रश्रय दिया जाता था। सिरपुर में राज्य करने वाले शरभपुरीय एवं पाण्डुवंशी राजाओं के अभिलेखों की भाषा उच्चकोटि की संस्कृत थी। जिस प्रकार गुप्त वंशी राजाओं के अभिलेख सुन्दर संस्कृत में गद्य और पद्य दोनों में पाये जाते हैं, उसी प्रकार सिरपुर के अभिलेख भी गद्य और पद्य की सुन्दर रचना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि श्रीपुर के पाण्डुवंशी राजाओं के अभिलेख शरभपुरीय राजाओं के अभिलेखों की अपेक्षाकृत साहित्य एवं भाषा की दृष्टि से अधिक उच्च स्तर के हैं। शरभपुरीय राजाओं के अभिलेख अधिकतर प्रारम्भिक एवं अंतिम श्लोकों को छोड़कर गद्य में ही पाये गये हैं। जबकि पाण्डुवंशियों के अधिकतर अभिलेख विभिन्न प्रकार के छंदों में रचित पाये गये हैं जो कि भाषा के लालित्य एवं साहित्य के सौन्दर्य को और भी मूल्यवान बना देते हैं। उदाहरणार्थ शिवगुप्त बालार्जुन के समय का सेनकपाट अभिलेख 1 वसंततिलका, स्तम्भधरा, शार्दूलविक्रीडित, आर्या, मालिनी, एवं अनुष्टुभ आदि छंदों में आबद्ध है। सेनकपाट अभिलेख जिसका रचयिता तारदत्त का पुत्र सुमंगल नामक कवि था, का निम्नलिखित श्लोक, जो कि वसंत तिलका छंद में है, तत्कालीन साहित्य के लालित्य का सुन्दर उदाहरण है :—

“तस्य प्रशस्य-विकसद-गुण-रत्न-राजि
संराजितविकल-लोक विलोकितस्य
पुत्रोत्तमोस्त्यमल शील-धनाधिकश्रीः
श्रीदुर्गरक्षिताति पृथाभिधानः”

(सेनकपाट अभिलेख श्लोक 9)

श्रीपुर के पाण्डुवंशीय नरेशों के राज्य में तारदत्त का पुत्र सुमंगल एक विद्वान कवि था जिसने गधेश्वर मन्दिर के अभिलेख, आनन्द प्रभु कुटि विहार एवं सेनकपाट अभिलेख

की सुन्दर रचना विभिन्न छंदों में की थी। इसी प्रकार लक्ष्मण मन्दिर अभिलेख का रचयिता ईशानदेव नामक कवि था जिसका उपनाम चिताचुरांक भी था। सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर अभिलेखकाव्य की अनुपम कृति है। उसका एक एक छंद साहित्य की सुन्दर रचना है। भगवान नृसिंह का वर्णन करते समय कवि का निम्नलिखित छंद साहित्य के अत्यन्त उच्चस्तर को प्रकट करता है :—

“लब्धो निर्मत्तुमेभिर्न रिपुरिति रसादत्तचक्षुर्नखेषु
त्रासात्तत्रोड रन्ध्रोदर कुहरदरी भेदलीनं विलोक्य
हासोल्लासावहेलं तदितटकरजाग्रेण निर्मिद्य सद्य-
कोशोच्चिक्षेप तज्जमलमिव दनुजः यः स वोव्यान्नसिंहः”¹
(लक्ष्मण मन्दिर अभिलेख श्लोक 2)

1. उत्कीर्ण लेख पृ. 38

अध्याय 5

धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति

धार्मिक स्थिति :— सिरपुर स्थित भग्नावशेष एवं अन्य पुरातात्विक अवशेषों की विशाल सामग्री सिरपुर की प्राचीन धार्मिक प्रवृत्तियों की स्फुट कहानी कहते हैं। ईसा की छठवीं शताब्दी तक सिरपुर में विभिन्न धर्मों का सहअस्तित्व तत्रस्थित धार्मिक सहिष्णुता का सुन्दर उदाहरण है। 639 ई० में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने दक्षिण कोशल की यात्रा की थी ¹ और वह दक्षिण कोशल की राजधानी भी गया था। परन्तु उसने राजधानी अथवा राजा का नाम नहीं लिखा है। यदि उसके द्वारा वर्णित दक्षिण कोशल की राजधानी सिरपुर ही थी जैसा कि डॉ. एम. जी. दीक्षित का अनुमान है। ² तो ह्वेनसांग का विवरण भी श्रीपुर की धार्मिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता प्रतीत होता है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि राजधानी में नास्तिक विधर्मी और आस्तिक दोनों प्रकार के लोग हैं। राजा जो कि क्षत्रिय जाति का है बौद्ध धर्म का बड़ा आदर करता है। वहाँ पर लगभग 100 संघाराम हैं और लगभग 10,000 से कुछ कम भिक्षु हैं। वे सब एक समान बौद्ध धर्म के उपदेशों का अध्ययन करते हैं। वहीं पर लगभग सत्तर देव-मन्दिर हैं। जिनमें विभिन्न पंथों के मानने वाले आते जाते हैं।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि कदाचित् ह्वेनसांग का विधर्मी शब्द अथवा नास्तिक शब्द से तात्पर्य बौद्धेतर धर्म के अनुयायियों से है (जैसे वैष्णव, शैव और जैन), सिरपुर के संदर्भ में यदि ह्वेनसांग के उक्त विवरण को हम देखते हैं तो यह विवरण बहुत कुछ सही बैठता है। वेगलर ³ और कनिंघम ⁴ ने भी सिरपुर में स्थित अनेकों वैष्णव, शैव, बौद्ध एवं जैन धर्म (एक) मन्दिरों का वर्णन किया है। सिरपुर के दूर दूर तक फैले खंडहरों एवं अद्यावधि प्राप्त मन्दिरों एवं मूर्तियों की संख्या से तुलना करने पर ह्वेनसांग का विवरण पर्याप्त मात्रा में तुल्य कोटि पर बैठता है। ह्वेनसांग ने संघारामों की संस्था सौ लिखी है। सिरपुर में अभी तक यद्यपि सौ संघाराम उत्खनन द्वारा प्राप्त नहीं हुए हैं परन्तु सर्व प्रथम सिरपुर के एवं सीमित क्षेत्र का ही उत्खनन हुआ है और दूसरे उसके दूर दूर तक फैले खंडहर ह्वेनसांग के वर्णन को असांभवित निरूपित नहीं कर सकते।

1. ट्रेवेल्स आफ ह्वेनसांग - भाग 4, संमुएल बिल, पृ. 414

2. सिरपुर एण्ड राजिम टेम्पल्स पृ. 18

3. अ. स. रि. भाग 7, पृ. 186-193

4. वही भाग 17 पृ. 27

ह्वेनसांग ने आगे लिखा है कि नगर के दक्षिण में थोड़ी दूर पर एक प्राचीन संधाराम है जिसके समीप एक स्तूप है, जिसे कि राजा अशोक ने बनवाया था। इस स्थान पर तथागत (बुद्ध) ने एक सभा बुलाकर अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन किया था एवं अविश्वासी व्यक्तियों को पराभूत किया था। इसके पश्चात् नागार्जुन बोधिसत्व इस संधाराम में रहा था। उस समय इस देश का राजा सद्बह (सातवाहन) ¹ था।

यदि ह्वेनसांग का उक्त विवरण श्रीपुर के संबंध में ही है तो इसके अनुसार महात्मा बुद्ध (5 वीं शताब्दी ई. पू.) श्रीपुर भी आये थे एवं उनके पश्चात् सातवाहन (2 शताब्दी ई.) के काल में नागार्जुन भी सिरपुर रहा था। इस प्रकार श्रीपुर के बौद्ध धर्म का इतिहास महात्मा बुद्ध के समय से प्रारम्भ होता है एवं अशोक मौर्य एवं सातवाहन काल से होता हुआ इसका इतिहास पांडुवंशी राजाओं के काल तक आता है। परन्तु इसके लिए हमें सिरपुर के भग्नावशेषों में उक्त स्तूप के अवशेष ढूँढ़ने होंगे। इसके अतिरिक्त ह्वेनसांग ने दक्षिण कोशल की जिस राजधानी का वर्णन किया है वह श्रीपुर थी अथवा कोई अन्य यह प्रश्न भी विवादास्पद है जिसके संबंध में आगे के अध्यायों में चर्चा की जायेगी।

श्रीपुर में पाँचवीं और छठवीं शताब्दी में राज्य करने वाले शरभपुरीय राजा वैष्णव धर्म के मानने वाले थे। उनके अभिलेखों पर प्राप्त मुद्राओं में गजलक्ष्मी एवं शख तथा चक्र के चित्र पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त अपने नामों के आगे ये राजा 'परम-भागवत' शब्द लगाते थे। ² उक्त सभी बातें उनके वैष्णव धर्म की आस्था को प्रगट करती हैं। श्रीपुर में केवल महामुदेवराज एवं महाप्रवरराज दो ही शरभपुरीय राजाओं ने कदाचित् राज्य किया। महाशिव गुप्त बालार्जुन के अतिरिक्त श्रीपुर में राज्य करने वाले समस्त पांडुवंशीय राजा वैष्णव धर्म के उपासक थे। इस वंश के एक प्रारंभिक राजा भवदेव रणकेशरी जिसका कि एक अभिलेख मांदक में (प्रो. मिराशी के अनुसार आरंभ में) प्राप्त हुआ है, निश्चित रूप से बौद्ध धर्म का उपासक था। उसने उक्त अभिलेख के अनुसार बुद्ध के एक मंदिर का जिसे कि सूर्यघोष नामक राजा ने बनवाया था, पुनरुद्धार करवाया। प्रो. मिराशी के अनुसार यह मंदिर आरंग में निर्मित कराया गया था। जबकि डा. हीरालाल एवं कनिधम इसे मांदक में बताते हैं। फिर भी यह निश्चित है कि श्रीपुर में राज्य करने वाले तीवरदेव, नन्नराज, चन्द्रगुप्त एवं हर्ष गुप्त वैष्णव धर्म के उपासक थे। तीवरदेव के नाम के आगे अभिलेखों में 'परम वैष्णव' शब्द मिलता है। इसी प्रकार हर्षगुप्त के नाम के आगे 'उपासिताच्युतः' शब्द मिलता है। तीवरदेव की राजिम एवं बलोदा ताम्र पत्र की मुद्राओं पर गरुड़ चिन्ह मिलता है। महाशिवगुप्त की माता एवं हर्षगुप्त की रानी वासटा भी वैष्णव थीं। यह तथ्य उसके

1. कनिधम ने 'सद्बह' शब्द को 'सातवाहन' माना है
देखिये - एन्सियन्ट जागरफी आफ इंडिया, पृ. 439
2. एपो. इ. 31, पृ. 314, 315

द्वारा निर्मित कराये है— “हरि” के मन्दिर (लक्ष्मण मन्दिर) से एवं वहां प्राप्त अभिलेख 1 से स्पष्ट होता है। लक्ष्मण मन्दिर के तोरण द्वार के वैष्णव शिल्प एवं वहां प्राप्त विष्णु की मूर्तियां भी इस बात की साक्षी हैं कि यह मन्दिर विष्णु का ही है। इसके अतिरिक्त गन्धेश्वर मन्दिर में प्राप्त एक अभिलेख 2 द्वारा वासटा ने अपने द्वारा बनवाये मन्दिर के देवता के पूजन के लिये वैदिक बाह्यणों को कई ग्राम भी दान में दिये थे।

सिरपुर में प्राप्त वैष्णव धर्म की सैकड़ों प्रतिमायें एवं कनिष्क 3 वेगलर 4 तथा कजिन्स 5 द्वारा वर्णित सिरपुर के वैष्णव मन्दिर इस बात के साक्षी हैं कि सिरपुर में वैष्णव धर्म की उपासना अत्यन्त विकसित स्तर पर थी। और अन्य धर्मों जैसे शैव, बौद्ध एवं जैन धर्म के साथ इसका सह अस्तित्व था क्योंकि अन्य धर्मों के अवशेष भी साथ ही साथ प्राप्त हुये हैं। पांडुवंशीय महाशिवगुप्त बालार्जुन जिसका राज्य काल श्रीपुर के राजाओं में सबसे लम्बी अवधि का था, शैवधर्म का उपासक था। परन्तु उसके समय के अभिलेख एवं भग्नावशेष इस बात के प्रमाण हैं कि वह एक परम धर्म सहिष्णु राजा था। एवं सभी धर्म उसके राज्य में समान धर्म से विकसित हो रहे थे। महाशिवगुप्त के अभिलेखों के मुद्रा पर नन्दी की आकृति मिलती है। एवं उसकी उपाधि भी (परम माहेश्वर) प्राप्त होती है। बालार्जुन के काल में गन्धेश्वर मन्दिर के लगभग समस्त अभिलेखों में शिव की अभ्यर्चना का ही वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसके समय के सेनकपाट अभिलेख में भी बालार्जुन के एक भृत्य दुर्गरक्षित द्वारा शिव के मन्दिर के निर्माण किया जाने एवं उसे शैव सन्यासी सदाशिवाचार्य को समर्पित किया जाने का वर्णन है।⁶ इसके अतिरिक्त महाशिवगुप्त बालार्जुन का नाम भी उसके शैव होने का द्योतक है। सिरपुर में स्थित गन्धेश्वर मन्दिर (चित्र फलक 2) शिवमन्दिर 1 (रेखा चित्र 5) शिवमन्दिर 2 (रेखा चित्र 6) तथा वेगलर कनिष्क और कजिन्स द्वारा किये गये शिव मन्दिरों के अवशेषों का वर्णन सिरपुर में फैले हुये शैव धर्म के उच्च स्वरूप का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त सिरपुर में प्राप्त होने वाली शैव धर्म की सैकड़ों मूर्तियां एवं बौद्ध विहारों में भी प्राप्त होने वाले शैव देवताओं के फलक इस बात के साक्षी हैं कि यह धर्म अन्य धर्मों के साथ पूर्ण सहिष्णुता के साथ वर्तमान था।

डा. एम. जे. दीक्षित को सिरपुर स्थित बौद्ध विहारों का उल्लंघन करते समय ऊपरी स्तर से शैव धर्म से सम्बन्धित शिलापट्ट मिले थे⁷ जिन पर गणेश, महिसासुर, मर्दनी

1- एपी. इ. 11, पृ. 184

2- ई. ए. भाग 18 पृ. 179

3- आ. स. रि. भाग 17 पृ. 23

4- आ. स. रि. भाग 7 पृ. 168

5- आ. स. रि. वे. स. 1904 पृ. 20

6- महाशिवगुप्त बालार्जुन के लोघिया ताम्रपत्र (एपी. इ. 27 पृ. 320) में भी शिवमन्दिर के लिये ग्रामदान का उल्लेख है।

7- इ. आर्कलाजी 1954-55 पृ. 26, 1955-56 पृ. 27

एवं शिवपार्वती आदि की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इसके आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि ये शैव लोग बाद में आये और इन्होंने बौद्ध विहारों पर अधिकार कर लिया।¹ परन्तु डा. एस. एल. कटारे इस बात से सहमत नहीं है।² उनका मत है कि ये सभी धर्म श्रीपुर में साथ ही साथ स्थित थे। वेगलर, कनिंघम और कजिन्स ने भी इन सभी धर्मों के अवशेषों का वर्णन किया है। (कृपया देखिये अध्याय चार) माहाशिवगुप्त बालार्जुन के अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि वह एक धर्मसहिष्णु राजा था। जहाँ एक ओर उसके अभिलेख उसके शैव होने के साक्षी हैं वहीं दूसरी ओर आनन्दप्रभ कुटिविहार में प्राप्त उसके समय के अभिलेख³ में एक बौद्ध विहार के निर्माण किये जाने का उल्लेख है। साथ ही उसके मल्लार ताम्रपत्र⁴ में उसके द्वारा भिक्षुक संघ को 'कैलाशपुर' नामक गाँव दान किये जाने का वर्णन है। उक्त वर्णन से वह यह सिद्ध करते हैं कि महाशिव-गुप्त के समय में सभी धर्म एक साथ शांति से फल फूल रहे थे। यह इस तथ्य से भी प्रमाणित है कि गधेश्वर मन्दिर के दो अभिलेखों के रचयिता तारदत्त का पुत्र सुमंगल जो कि सेनकपाट अभिलेख का भी रचनाकार था, ने ही आनन्दप्रभ कुटिविहार में प्राप्त प्रशस्ति की भी रचना की थी। आनन्दप्रभ कुटिविहार के समीप ही लगभग एक सौ मीटर की दूरी पर स्थित शिवमन्दिर-2 भी इस तथ्य का साक्षी है।

शैव और वैष्णव धर्म के साथ साथ श्रीपुर महायान बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। यदि ह्वेनसांग द्वारा वर्णित दक्षिण कौशल की राजधानी को श्रीपुर ही माना जाये तो यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कदाचित् महायान बौद्ध धर्म के इस प्रख्यात केन्द्र की ख्याति सुन कर ही हे वेनसांग यहाँ आया था। डा. एम. जी. दीक्षित को श्रीपुर में बौद्ध विहारों का उत्खनन करते समय काई युवान के समय (713-41 ई.) का एक ताम्बे का चीनी सिक्का 1956 में प्राप्त हुआ था।⁵ जो कि इस बात का प्रमाण है कि कदाचित् चीनी बौद्ध भिक्षु भी यहाँ आते थे। उत्खनन के द्वारा कई बौद्ध विहार डा. एम. जे. दीक्षित को प्राप्त हुये हैं (देखिये अध्याय 4) इसके अतिरिक्त सिरपुर में प्राप्त अनेकों बौद्ध धर्म की धातु प्रतिमाएँ तथा उनके बनाने के औजार इस बात का प्रमाण हैं कि सिरपुर महायान बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। आनन्दप्रभ कुटिविहार, निचलाविहार, स्वस्तिकविहार एवं विहार क्र. 1 से 5 जो कि डा. एम. जी. दीक्षित को 1954-55 व 1955-56 में प्राप्त हुये थे उनके अतिरिक्त वेगलर, कनिंघम और कजिन्स ने भी बौद्ध भग्नावशेषों का वर्णन अपनी रिपोर्ट में किया है। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म की अनेकों

1- वही।

2- दी इन्डियन हिस्ट्री. क्वा. भाग 34, नं. 1 पृ. 3

3- एपी. इ. 31 पृ. 195

4- वही 23 पृ. 133

5- इ. आ. 1955-56, पृ. 27

प्रतिमाएँ आज भी सिरपुर में यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं। सिरपुर में बनने वाली धातुप्रति-
माएं इस बात की साक्षी हैं कि श्रीपुर दक्षिण कौशल में फैलने वाली गुप्तोत्तर कालीन
कला का केन्द्रस्थल तो था ही साथ ही महायान बौद्ध धर्म का प्रचार व प्रसार भी कदा-
चित् सारे दक्षिण कौशल में श्रीपुर से ही हुआ।

जैन धर्म के अवशेष यद्यपि श्रीपुर में उतनी मात्रा में प्राप्त नहीं होते हैं फिर भी जो
अवशेष मिलते हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्य धर्मों के साथ
जैन धर्म भी सिरपुर में विद्यमान था। वेगलर¹ ने लिखा है :- “किले के समीप ही एक
जैन मन्दिर के अवशेष हैं जैसा कि एक संकल्प चैत्य, जिसके चारों ओर चार तमन जैन
आकृतियाँ हैं, से प्रमाणित होता है। यह असंभव नहीं है कि उक्त दिवारों का घेरा
एक जैन विहार था, केवल कठिनाई इस बात की है कि यह गंधेश्वर मन्दिर के अत्यंत
निकट है।

वेगलर द्वारा वर्णित उक्त जैन मन्दिर श्रीपुर में था अथवा नहीं परन्तु श्रीपुर में जैन
धर्म की अनेकों प्रतिमाएँ इस तथ्य का प्रमाण हैं कि अवश्यमेव सभी धर्मों के साथ साथ जैन
धर्म भी पूर्ण स्वतंत्रता के साथ श्रीपुर में फैला था। आज भी सिरपुर स्थित संग्रहालय में
जैन धर्म की प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं इसके अतिरिक्त रायपुर संग्रहालय में संग्रहीत सिरपुर से
प्राप्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। उक्त सभी धर्म दक्षिण
कौशल की राजधानी श्रीपुर में एक साथ शांतिपूर्ण ढंग से फल फूल रहे थे। धार्मिक
सहिष्णुता का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति :—

श्रीपुर में राज्य करने वाले राजाओं के अभिलेखों के अध्ययन से तत्कालीन सामा-
जिक एवं आर्थिक अवस्था की झलक प्राप्त होती है। तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों का
विशेष मान था। प्रायः सभी अभिलेख ब्राह्मणों को दिये गये दान का उल्लेख करते हैं।
इसके अतिरिक्त दान करते समय राजा ब्राह्मणों को प्रणाम कर अपना आदेश देता था।
परन्तु उच्चकोटि के विद्वान एवं धर्माचरण करने वाले ब्राह्मणों को ही दान दिये जाते थे।
लक्ष्मण मन्दिर के अभिलेख से ज्ञात होता है कि जिन ब्राह्मणों को दान दिया गया था।
वे ऋग्वेद, साम वेद और, यजुर्वेद के ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त अग्निहोत्री होना,
अमयुक्त होना; जुआ, वेश्यागमन से दूर होना; वर्णशंकर न होना और किसी का नौकर
न होना, पुत्र हान न होना, विद्यावान होना, आदि ऐसे गुण थे जिसका ध्यान रख कर
उन्हें दान दिया जाता था।

ब्राह्मणों के गोत्रों के नाम यथा 'भारद्वाज' और 'पाराशर' तथा उसकी उपशाखा जैसे 'वाजसनेय' शाखा के नाम भी प्राप्त होते हैं। ब्राह्मणों के नामों के आगे 'भट्ट' और पीछे 'स्वामी' शब्दों का प्रयोग होता था। ब्राह्मणों को उस समय उच्च पद पर भी रखा जाता था। महाशिवगुप्त बालार्जुन के समय के 'सेनकपाट' अभिलेख में वर्णन है कि उसके काल में 'शिव रक्षित' नामक ब्राह्मण 'राजा' के स्तर पर नियुक्त था। एवं कदाचित् 'नव्यासी विषय' का शासक भी था।¹ उसका पुत्र 'देवरक्षित' वर्धा नदी तक के प्रदेश का शासक था।

ब्राह्मणों के अतिरिक्त कुछ अभिलेखों में मालियों का भी उल्लेख है। जो कि मंदिरों के देवता के लिए पुष्पों का प्रबन्ध करते थे। उस समय यज्ञ की प्रथा भी प्रचलित थी। महाशिवगुप्त के सेनकपाट के अभिलेख में ऐसे एक 'यज्ञ' किये जाने का उल्लेख है,² जिसे शैव सन्यासी कराते थे। शैव धर्म में 'दीक्षा' दिलाना एवं उसकी 'व्याख्या' करना भी शैव सन्यासियों का काम था। घन पर व्याज लेना उस समय बुरा माना जाता था। श्रीपुर का समीपवर्ती क्षेत्र चावल के उत्पादन के लिये कदाचित् उस समय भी प्रसिद्ध था जैसा कि आजकल है। आनन्द प्रभुकुटी बिहार में प्राप्त बालार्जुन के समय के अभिलेख में भिक्षु संघ के भोजन के लिये एक सफेद चावल के खेत का दान किये जाने का उल्लेख है।³ तत्कालीन मंदिरों में नृत्य और संगीत की भी व्यवस्था रहती थी जिसका प्रबन्ध राजा स्वयं करता था। महाशिवगुप्त के 'लोधिया' ताम्र पत्र में शिव के मंदिर में पूजा, नृत्य और संगीत तथा भोजन की व्यवस्था के लिये दान का उल्लेख है।⁴

शिरपुर में किये गये उत्खनन में दैनिक उपयोग में आने वाली अनेकों वस्तुयें प्राप्त हुयी हैं, जिनसे भी उनके दैनिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। बौद्ध बिहार यद्यपि पूजा एवं आराधना के स्थल थे। परन्तु, उनमें 2000 से अधिक वस्तुयें प्राप्त हुयी हैं। जिनसे यह सुनिश्चित प्रतीत होता है कि मठ में सुखकारी जीवन व्यतीत किया जाता था। डा० एम० जी० दीक्षित के अनुसार इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मठ में रहने वाले बौद्ध धर्म के अनुयायी होने पर भी आधुनिक समाज के निम्न मध्य वर्ग के व्यक्ति थे और कृषि, बर्तन बनाने और सुवर्ण कार्य आदि विभिन्न काम धन्धों को अपनाते थे।⁵ डा. एम. जी. दीक्षित द्वारा उत्खनित किए इन मठों में बरामदों की पिछली ओर 8×9 फुट के आकार की कोठरियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें प्रत्येक में आलों की व्यवस्था है। जिनमें एक दरवाजे की सांकल के लिये, दूसरा दीपक के लिये, तीसरा ताले के लिए और चौथा

1- एम. जी दीक्षित एपी. इ. 31 पृ. 32

2- वही पृ. 33

3- एपी. इ. 31 पृ. 198

4- वही 27 पृ. 320

5- श्री शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ पृ 189

वहाँ निवास करने वाले भिक्षुओं के सामान के लिये था। तत्कालीन लोग गृह कार्यों में कढ़ाई, तवा, चम्मचें, करछी, मथानी, और सरौता आदि लोहे की वस्तुयें प्रयुक्त करते थे। दरवाजों में वे लोग स्कन्दाहत (SPRING PUSH) प्रकार का ताला भी प्रयुक्त करते थे। छतों में इमारती लकड़ी का प्रयोग होता था। उत्खनन के समय प्रत्येक कमरे में दैनिक आवश्यकता की वस्तुयें यथा आटे की चक्की, सिलबट्टा और कहीं-कहीं ऊखल भी मिला है। बरामदों के कोनों में बड़े-बड़े रख कर पानी की व्यवस्था की जाती थी और आलों में मिट्टी के दीपक रखकर बरामदों में प्रकाश जाता था।

ह्वेन सांग ने भी दक्षिण कौशल की राजधानी के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन किया है¹

“राजधानी लगभग 40 ली के घेरे में है, मिट्टी घनी एवं उर्वरा है और प्रचुर फसलें उत्पन्न करती है। नगर एवं ग्राम समीप-समीप हैं। आबादी बहुत घनी है। निवासी लम्बे कद के एवं काले रंग के हैं। स्वभाव के कठोर एवं तीव्र हैं, वे वीर एवं क्रोधी हैं.....वे अध्ययन में दत्त चित्त रहते हैं एवं कुशाग्र बुद्धि के हैं।”

श्रीपुर की आर्थिक स्थिति का अनुमान वहाँ स्थित भव्य मन्दिरों एवं भवनों के भग्नावशेषों से लगाया जा सकता है। अभिलेख भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि राजा सदैव नये-नये मन्दिर एवं मठ बनवाते रहते थे तथा ग्रामों का दान देते रहते थे। यह सुखी एवं सम्पन्न समाज के ही द्योतक हैं। दक्षिण कौशल की राजधानी में जिस कला का विकास हुआ वह स्वयं इस तथ्य की साक्षी है कि समाज एवं राज्य की दशा अत्यन्त शान्तिमय, सुखमय एवं समृद्धिशाली थी। क्योंकि इस प्रकार की उच्च कला का विकास उक्त परिस्थितियों में ही हो सकता है। स्वयं श्रीपुर का नाम भी सम्पन्नता एवं समृद्धि का द्योतक है।

1- ट्रेवेल्स आफ ह्वेन सांग-संमूल बोल, भाग-4 पृष्ठ 415

अध्याय—6

ह्वेन सांग एवं नागार्जुन

सन् 639 में चीनी यात्री ह्वेन सांग ने दक्षिण कौशल (क्रिआओं-स-लो) की यात्रा की थी। उसने यहाँ की राजधानी एवं राजा का वर्णन किया है। परन्तु दुर्भाग्यवश न तो उसने राजधानी का नाम दिया है और न राजा का। इसी कारण यह निश्चित करना बड़ा दुरूह हो गया है कि ह्वेन सांग द्वारा वर्णित राजधानी और वहाँ का राजा कौन था। विद्वानों के बीच यह एक विवादास्पद प्रश्न बन गया है। इसीलिए इस समस्या पर विचार करने के लिए एक पृथक अध्याय लेना आवश्यक प्रतीत होता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन का संबन्ध भी श्रीपुर से बताया जाता है। जो निर्विवाद नहीं हैं।

सर एलेक्जेंडर कनिंघम ने ¹ ह्वेन सांग द्वारा वर्णित राजधानी को महाराष्ट्र प्रदेश में स्थित 'चाँदा' माना है उनका यह अनुमान इस तथ्य पर आधारित है कि उड़ीसा में स्थित राजमहेन्द्री, जिसे कि कनिंघम ने कलिग की प्राचीन राजधानी बताई है, से चाँदा लगभग 290 मील उत्तर पश्चिम में है। ह्वेन सांग ने अपनी यात्रा के वर्णन में लिखा है कि कलिग से लगभग 1800 लीं उत्तर पश्चिम में चलकर वह कौशल देश में पहुँचा। कनिंघम ने 1 ली को 6 मील के बराबर माना है। और इस प्रकार 1800 ली को 300 मील के रूप में परिवर्तित किया है। अतः इसके अनुसार चाँदा ही ह्वेन सांग द्वारा वर्णित दक्षिण कौशल की राजधानी है। चाँदा के समीप ही लगभग 7 मील पर 'मांदक' नामक स्थान पर प्राचीन भग्नावशेष प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। ² परन्तु डा. एम. जी. दीक्षित जिन्होंने सिरपुर के भग्नावशेषों का उत्खनन किया है, का मत है कि ह्वेन सांग द्वारा वर्णित दक्षिण कौशल की राजधानी "सिरपुर" है। ³

इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य विचारणीय है। यदि 'श्रीपुर' को ही ह्वेन सांग द्वारा वर्णित राजधानी मानते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि कलिग से इसकी दूरी जैसा कि ह्वेन सांग ने लिखा है 1800 ली अर्थात् 300 सौ मील से बहुत कम है। (यदि 6

1- एशियनट्र जयाग्रफी आफ इन्डिया पृ. 439

2- मि. फर्गुसन ने 5 ली का एक मील मानकर बैरागड़ या मांदक को ह्वेन सांग की वर्णित राजधानी माना है (I. R. A. S. N. S. Vol. VI P. 260)

3- सिरपुर एन्ड राजिम टेम्पल्स, पृ. 18

ली. को एक मील माना जाय) ह्वेन सांग द्वारा वर्णित कलिंग से कक्षिण कौशल की राजधानी की दूरी 'चाँदा' अथवा 'मांदक' से अधिक उचित बैठती है। मांदक के भग्ना-वशेष भी लगभग 6 मील के घेरे में हैं। ह्वेन सांग ने राजधानी का घेरा 40ली = 7 मील बताया है। मांदक में अनेकों बौद्ध बिहारों एवं हिन्दू मन्दिरों के खंडहर प्राप्त होते हैं। इस दृष्टिकोण से मांदक उचित प्रतीत होती है परन्तु सिरपुर के अवशेष भी छह या सात मील की दूरी तक विस्तीर्ण हैं साथ ही बौद्ध बिहारों एवं मन्दिरों के खंडहर भी सिरपुर में वर्तमान हैं। ह्वेन सांग ने अपने विवरण में नागार्जुन का वर्णन किया है जो कि राजधानी की दक्षिण ओर एक संघाराम में रहा था। मांदक की समीपवर्ती कुछ पहाड़ी गुफाओं का सम्बन्ध नागार्जुन से अनुश्रुतिओं के अनुसार बताया जाता है। परन्तु श्रीपुर में नागार्जुन सम्बन्धी ऐसी कोई अनुभूति नहीं है। ह्वेन सांग ने 'शद्रह' राजा का वर्णन किया है जिसे कनिष्क ने भी गौतमी पुत्र शातकर्णी निरूपित करने की संभावना बताई है।¹ इसका तात्पर्य यह है कि यदि ह्वेन सांग के वर्णन को सही माना जाये तो श्रीपुर अथवा मांदक में गौतमी पुत्र शातकर्णी की राजधानी होनी चाहिए। परन्तु उपलब्ध प्रमाण शातवाहनों की राजधानी सिरपुर में निरूपित नहीं करते हैं। फिर भी चूंकि नागार्जुन और शातवहन की घटना ह्वेन सांग की यात्रा से कई शताब्दी पूर्व की है। अतः वह बहुत अधिक प्रमाणिक होगी। यह कहना कठिन है।

एक अत्यन्त आवश्यक तथ्य है कि ह्वेन सांग ने राजधानी से लगभग 300 ली अथवा 50 मील दक्षिण पश्चिम में पहाड़ी पर स्थित गुफाओं का वर्णन किया है जिन्हें कि नागार्जुन के लिये शातवाहन राजा ने खुदवाया था। यदि सिरपुर को ही राजधानी मानते हैं तो हमें सिरपुर के दक्षिण पश्चिम में ऐसी गुफायें ढूँढ़नी होंगी। परन्तु जिस प्रकार का वर्णन ह्वेन सांग ने गुफाओं के सम्बन्ध में किया है वैसी पाँच मंजिल की गुफाएं श्रीपुर की 50 मील दक्षिण पश्चिम में प्राप्त नहीं होती हैं। कनिष्क ने एलोरा की गुफाओं को ही इन गुफाओं से सम्बन्ध करने का प्रयास किया है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि ह्वेन सांग स्वयं इन गुफाओं तक नहीं गया था अपितु उसका यह वर्णन सुनी हुई बातों पर आधारित है।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न राजधानी में राज्य करने वाले राजा का है। ह्वेन सांग ने लिखा है "राजा क्षत्रिय जाति का और बौद्ध धर्म का बड़ा सम्मान करता है।" श्रीपुर के सम्बन्ध में यदि हम इस वर्णन को देखते हैं तो महाशिवगुप्त बालार्जुन का समय ह्वेन सांग की यात्रा के समय (639ई.) में आता है। महाशिवगुप्त क्षत्रिय जाति का था और बौद्ध धर्म का बहुत आदर करता था यह बात उसके अभिलेखों एवं उसके

राज्य काल में बनवाये गये अनेक बौद्ध विहारों से प्रमाणित है। ह्वेन सांग ने राजा के सम्बन्ध में यह भी लिखा है कि “उसके गुण एवं उसका प्रेम दूर-दूर तक विख्यात है।” महाशिवगुप्त बालार्जुन के गुणों एवं उसके पूजा के प्रति प्रेम के प्रमाण उसके समय के अभिलेख एवं विभिन्न मंदिर व विहार हैं। सिरपुर के उत्खनन में प्राप्त काईयुवान (713-41 ई.) के समय चीनी सिक्का भी इस बात का प्रमाण है कि चीनी यात्री सिरपुर में आते थे।

डा. विष्णु सिंह ठाकुर ने अपने अप्रकाशित शोध ग्रन्थ ‘हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दक्षिण कौशल’ में लिखा है कि ह्वेन सांग ने जिस राजा का वर्णन किया है वह कदाचित् पांडुवंशी नरेश नन्नराज प्रथम का भाई ‘भवदेवरणकेशरी’ था, जिसका एक अभिलेख मांदक में प्राप्त हुआ है। उनका मत है कि चूंकि भवदेवरण केशरी बौद्ध था जैसा कि उसके अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने एक बौद्ध मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। अतः संभवतः उसी का वर्णन ह्वेन सांग ने किया है और चूंकि कदाचित् भवदेवरण-केशरी स्वतन्त्र शासक न होकर चाँदा में एक गवर्नर के रूप में नियुक्त था इसीलिए ह्वेन सांग ने उसका नाम नहीं दिया है।

परन्तु प्रो. मिराशी के अनुसार मांदक का प्रदेश पांडुवंशी राजाओं के राज्य में नहीं था और भवदेवरणकेशरी के समय का उक्त अभिलेख आरँग में प्राप्त हुआ था।¹ उनके गणना के अनुसार भवदेवरणकेशरी की तिथि भी लगभग एक शताब्दी पूर्व जाती है। प्रो. मिराशी की गणना के अनुसार महाशिवगुप्त बालार्जुन का ही समय ह्वेन सांग की यात्रा के समय से मेल खाता है। प्रो. मिराशी के अनुसार पांडु-वंशियों ने मांदक पर कभी राज्य नहीं किया न उनका कोई अभिलेख ही वहाँ प्राप्त हुआ क्योंकि पांडवों के राज्य से मांदक अधिक दूर पड़ता है।

इस प्रकार ह्वेन सांग के द्वारा वर्णित राजधानी का प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है। यदि प्रो. मिराशी के मत को माना जाय कि मांदक पांडुवंशियों की राजधानी में सम्मिलित नहीं था तो प्रश्न उठता है कि ह्वेन सांग ने दक्षिण कौशल के राज्य का जो घेरा वर्णित किया है वह 5000ली अथवा लगभग 900 मील होता है। यदि मांदक और चाँदा के प्रवेश को दक्षिण कौशल में सम्मिलित किया जाता है तभी ह्वेन सांग का वर्णन दक्षिण कौशल के सम्बन्ध में ठीक बैठता प्रतीत होता है। परन्तु हम देखते हैं कि जिस समय ह्वेन सांग दक्षिण कौशल आया (639 ई.) उस समय दक्षिण कौशल में महाशिवगुप्त बालार्जुन राज्य कर रहा था और उसकी राजधानी सिरपुर में थी। जबकि सिरपुर के भग्नावशेष एवं अन्य प्रमाण भी ह्वेन सांग के विवरण से यदि पूर्णरूपेण नहीं तो पर्याप्त मात्रा में मिलते-जुलते दृष्टिगत होते हैं फिर भी किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व हमें अन्य स्पष्ट प्रमाणों को ढूँढ निकालने की आवश्यकता है।

1- एपी. इ. 26 पृ. 227। (पाद टिप्पणी)

अध्याय - 7

सिरपुर के समकालीन सांस्कृतिक स्थल

लगभग समस्त दक्षिण कोशल को सींचने वाली महानदी के दाहिने तट पर स्थित सिरपुर केवल राजनैतिक दृष्टि से ही दक्षिण कोशल की राजधानी नहीं थी। अपितु समस्त दक्षिण कोशल की कला, उसकी संस्कृति एवं उसका धर्म इस-केन्द्र नगर में ही केन्द्रीभूत-सा था। वास्तव में गुप्तोत्तर कालीन कला के क्षेत्र में दक्षिण कोशल अपना एक पृथक अस्तित्व रखता है और सिरपुर इसका केन्द्र स्थल था, जहाँ से समस्त दक्षिण कोशल में यह कला विस्फुरित एवं उत्प्रेरित हुयी। फलस्वरूप दक्षिण कोशल में स्थित महानदी के तट पर राजिम, आरंग, पुजारीपाली, खरोद और शिवरी नारायण के कला केन्द्रों की स्थापना हुई जिनके भग्नावशेष आज भी इस बात के साक्षी हैं कि दक्षिण कोशल की गुप्तोत्तर कालीन कला केन्द्र-स्थल श्रीपुर के सहायक के रूप में वे भी उस युग में अपना पूर्ण योगदान करते रहे और उन्होंने महानदी के तट पर एक स्वतंत्र संस्कृति को जन्म दिया।

राजिम — रायपुर से लगभग 53 किलोमीटर रायपुर जिले में दक्षिण पूर्व में महानदी और पैरी के संगम पर स्थित राजिम सिरपुर का समकालीन कला केन्द्र था। वहाँ पर स्थित मन्दिरों का समूह यद्यपि अधिक मात्रा में पुनर्निर्मित हो चुका है, फिर भी उसकी योजना एवं उसके विभिन्न अवयव तथा उसकी शिल्प एवं मूर्तिकला सिरपुर की पांडुकालीन कला का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजिम में प्राप्त पांडुवंशी नरेश तीवरदेव का ताम्रपत्र भी उसके पांडुवंश कालीन स्थिति का प्रमाण है। सिरपुर की ही भाँति पांडुवंशी काल के पश्चात् सभी कालों की कला की छाप के उदाहरण राजिम में प्राप्त होते हैं।¹

राजिम स्थित राजिवलोचन मन्दिर की योजना सिरपुर के लक्ष्मण मन्दिर के ही समान है। मन्दिर के महामंडप के स्तंभ जो कि निचले भाग में सादे एवं शीर्ष भाग में अत्यन्त ही अलंकृत हैं, गुप्तोत्तर कालीन कला के प्रतीक हैं। कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि सिरपुर के लक्ष्मण मन्दिर के महामंडप के स्तंभ नाव द्वारा राजिम लाये गये थे²। मन्दिर के अर्द्धस्तंभ एवं उन पर उत्कीर्ण देवताओं एवं परिचारकों की मूर्तियाँ पांडुवंशी कला का प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार राजिवलोचन

1 - सिरपुर एन्ड राजिम टेम्पल्स पृ. 28

2 - आ. स. रि. भाग 17, पृ. 23

मन्दिर के दक्षिण पूर्वी देव मन्दिर में वामन की प्रतिमा शरभपुरीय कला का उत्कृष्ट नमूना है।¹ इसी प्रकार राजिम में स्थित रामचन्द्र का मन्दिर पांडुकाल व कल्चुरी काल की कला के उदाहरण प्रस्तुत करता है। राजिम की यह शिल्प एवं स्थापत्य कला सिरपुर की कला का अनुवर्तन है और इस बात का प्रमाण है कि सिरपुर में जिस कला का जन्म एवं विकास हुआ उसका एक केन्द्र महानदी के तट पर स्थित राजिम भी था।

आरंग :— राजिम से लगभग 38 किलोमीटर उत्तर महानदी के ही तट पर स्थित आरंग कदाचित् दक्षिण कोशल के प्राचीनतम स्थलों में से एक है। अभी हाल ही में आरंग के समीप 'गुजरा' गाँव में प्राप्त चांदी के आहत सिक्के उसके इतिहास को ई.पू. पांचवीं शताब्दी तक ले जाते हैं। आरंग से प्राप्त भीमसेन द्वितीय का अभिलेख एवं (यदि प्रो. मिराशी के मत को माना जाय तो) पांडुवंशी नरेश भवदेव रणकेशरी का अभिलेख आरंग की श्रीपुर के समकालीन स्थिति का परिचय देते हैं। शरभपुरीय नरेश महाजयराज एवं महासुदेवराज के अभिलेख भी आरंग से प्राप्त हुये हैं। आरंग के भग्नावशेष भी उसे श्रीपुर का समकालीन अथवा कदाचित् उससे भी प्राचीन होने का दावा करते हैं। आरंग से लगभग 24 किलोमीटर ऊपर की ओर महानदी के दाहिने किनारे पर सिरपुर की स्थिति है।

खरोद :— बिलासपुर जिले में महानदी के तट पर स्थित खरोद भी दक्षिण कोशल में विकसित होने वाली गुप्तोत्तर कालीन कला का केन्द्र था। वास्तव में 8वीं शताब्दी का काल दक्षिण कोशल में ईंटों के मन्दिरों के निर्माण एवं महायान बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान का काल था। खरोद में स्थित ईंटों का मन्दिर उस काल की कला का नमूना है। लक्ष्मण मन्दिर की भांति इस मन्दिर में भी गर्भगृह के तोरण द्वार के ऊपर एक त्रिकोणीय वातायन है।² इस मन्दिर में पांडुवंशीय नरेश 'ईशानदेव' का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। यह ईशानदेव प्रसिद्ध पांडुवंशी नरेश तीवरदेव के पिता नन्नदेव का भाई एवं उदयन के पुत्र इन्द्रबल का पुत्र था। अभिलेख में उसके द्वारा लखनेश्वर का मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है।

पुजारीपाली :— रायगढ़ जिले में स्थित सारंगढ़ राज्य में पुजारीपाली नामक एक छोटा सा गाँव है। जहाँ पर अनेकों ईंट के मन्दिरों के अवशेष एवं शिलायुक्त तोरण द्वार यत्र तत्र प्रकीर्ण हैं। ईंटों के अवशेष शैली एवं स्थापत्य की दृष्टि से श्रीपुर के लक्ष्मण मन्दिर के ही समान हैं। इस मन्दिर के गर्भगृह के तोरण द्वार के ऊपर सिरपुर

1 - सिरपुर एण्ड राजिम टेम्पल्स पृ. 30

2 - वही पृ. 19

के लक्ष्मण मन्दिर की भांति एक त्रिकोणीय वातायन है।¹ पुजारीपाली के ये भग्न मन्दिर एवं शिल्पयुक्त स्तंभ वहां पर स्थित 6 वीं शताब्दी के किसी प्राचीन नगर का बोध कराते हैं। उल्लेखनीय है कि श्रीपुर के प्रसिद्ध पांडुवंशी शासक महाशिवगुप्त बालार्जुन का एक ताम्रपत्र इसी पुजारीपाली के समीप स्थित 'लोधिया' नामक ग्राम से प्राप्त हुआ है। लोधिया में भी कुछ शिव लिंग, पालिश किये हुये पत्थर, शिल्पयुक्त प्रस्तर स्तंभ, सुन्दर मूर्तियां एवं आकृतियां प्राप्त हुई हैं। उनमें से दो मूर्तियां शेषशायी विष्णु की एवं हिरण्यकश्यप का वध करते हुये नृसिंह की है।² लोधिया से लगभग 1 फर्लिंग की दूरी पर कई भग्नावशेषों के ढेर हैं जो कि इस स्थल की प्राचीनता के द्योतक है।

इस प्रकार दक्षिण कोशल की राजधानी सिरपुर गुप्तोत्तर काल में दक्षिण कोशल की संस्कृति एवं एक स्वतंत्र कला का प्रधान केन्द्र था। वास्तव में श्रीपुर के पांडुवंशी राजाओं को ही दक्षिण कोशल में महायान बौद्ध धर्म के प्रचार एवं ईंटों के मन्दिरों के निर्माण का श्रेय प्राप्त है। सिरपुर के ईंटों के मन्दिर की स्थापत्य कला अपने ढंग की अद्वितीय है। यहां की बौद्ध धातु मूर्तियां एक स्वतंत्र कला केन्द्र का प्रतीक हैं। दक्षिण कोशल की इस काल की स्थापत्य एवं मूर्ति कला गुप्तकाल एवं मध्यकाल की स्थापत्य एवं मूर्ति कला के बीच की कड़ी है। और श्रीपुर के पांडुवंशियों की यह कला इन दोनों युगों के बीच के उस संक्रमण काल की कला है जिसमें हम गुप्तकाल की कला की बुझती हुई शिखा के धूमिल चिन्ह एवं आने वाली मध्यकालीन स्थापत्य एवं मूर्तिकला के बीज कुर देखते हैं। दक्षिण कोशल में इस प्रकार की अन्तरिम कला का एक पृथक् अस्तित्व सा बन गया था। जिसके स्मारक राजिम, खरोद, आरंग और पुजारीपाली में प्राप्त होते हैं और जिसका प्रधान केन्द्र एवं प्रेरणा स्थल श्रीपुर स्वयं था।

1 - सिरपुर एन्ड राजिम टेम्पल्स पृ. 19

2 - एपी. इ. 27. पृ. 319

सहायक ग्रन्थों की सूची

- 1- आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट-कनिंघम, जिल्द 7, 9, 17
- 2- आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट-वेस्टन सैकिल 1904
- 3- इन्डियन आर्कियालाजी ए रिव्यू 1953-54, 54-55, 55-56, 56-57
- 4- कार्पूस इन्सक्रिप्शनस इन्डिकेरम-भाग 3,4
- 5- इन्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग 19,35 (नं. 1), 34 (नं. 1)
- 6- जनरल ऑफ आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसायटी भाग 6
- 7- जनरल आफ इन्डियन हिस्ट्री जिल्द 10 (भाग 1), 40 (भाग 1), 44 (भाग 2), 30 (भाग 1)
- 8- जनरल आफ मध्यप्रदेश इतिहास परिषद-भान 2
- 9- इन्डियन एन्टीक्वेरी भाग 18
- 10- एपीग्राफिया इन्डिका-जिल्द 22, 26, 11, 31, 27, 34, 33, 9, 25, 14, 3,
- 11- हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दक्षिण कौशल (अप्रकाशित शोध ग्रन्थ)
श्री विष्णु सिंह ठाकुर
- 12- बाल्मीकि रामायण (प्रकाशक रामनारायण लाल-इलाहाबाद)
- 13- महाभारत (गीताप्रेस गोरखपुर)
- 14- वायु पुराण
- 15- कल्चुरल फोरम-1961
- 16- ट्रेवेलस आफ ह्वेनसांग-सैमुएल बील
- 17- दि एन्शियन्ट ज्याग्रफी आफ इन्डिया-कनिंघम
- 18- मध्यप्रदेश का इतिहास-डा. हीरालाल
- 19- प्रोसीडिंग्स आफ फिफथ ओरिएण्टल कान्फ्रेंस
- 20- स्टडीज इन इन्डालाजी भाग 1
- 21- इन्सक्रिप्शनस इन सी. पी. एण्ड बरार-डा. हीरालाल
- 22- उत्कीर्ण लेख-बालचन्द जैन
- 23- बाकाटक गुप्त एज-मजुमदार तथा अल्टेकर
- 24- श्री शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ
- 25- सिरपुर एण्ड राजिम टेम्पल्स-डा. एम. जी. दीक्षित
- 26- खंडहरो का वैभव-मुनि कान्ति सागर
- 27- बुलेटिन आफ प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम-भाग 5
- 28- रायपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जिल्द-ए (1909)
- 29- मध्यप्रदेश और बरार का इतिहास-योगेन्द्र नाथ शील

- 30- ह्वेन सांग का भारत भ्रमण—ठाकुर प्रसाद शर्मा
- 31- इन्डियन आर्कीटेक्चर (बुद्धिस्ट एन्ड हिन्दू) परसी ब्राउन
- 32- कल्चरी नरेश और उनका काल—डा. वा. वि. मिराशी
- 33- पोलिटिकल हिस्ट्री आफ सोमवंशी रूलर्स आफ दक्षिण कौशल (अप्रकाशित शोधग्रन्थ) श्रीराम नेमा
- 34- सतपुड़ा की सभ्यता—प्रयागदत्त शुक्ल
- 35- महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, पुरातत्व उपविभाग में संग्रहीत वस्तुओं का सूचीपत्र, भाग 2, भाग 3
- 36- मध्यप्रदेश के पुरातत्व की रूपरेखा —डा. एम. जी. दीक्षित
- 37- श्री विष्णु-महायज्ञ (रत्नपुर) स्मारक ग्रन्थ
- 38- हिस्टारिकल ज्याग्रफी आफ एन्शियन्ट इन्डिया—बी. सी. ला
- 39- दि जरनल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसायटी आफ इन्डिया, जिल्द 19
- 40- महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय पुरातत्व उपविभाग प्रदर्शिका

चित्र-फलक-सूची

चित्र फलक- 1	लक्ष्मण मन्दिर
चित्र फलक- 2	गन्धेश्वर मन्दिर
चित्र फलक- 3	आनन्द प्रभु कुटी विहार
चित्र फलक- 4	स्वास्तिक विहार
चित्र फलक- 5	बातायन : लक्ष्मण मन्दिर
चित्र फलक- 5 (अ)	शिव तांडव : गन्धेश्वर मन्दिर प्रांगण
चित्र फलक- 5 (ब)	वैकुण्ठ नारायण की प्रतिमा, लक्ष्मण मन्दिर
चित्र फलक- 6	महिषासुर मर्दिनी
चित्र फलक- 7	बुद्ध प्रतिमा : आनन्द प्रभु कुटी विहार
चित्र फलक- 8	चतुर्मुख लिंग
चित्र फलक- 9	शिव पार्वती : गन्धेश्वर मन्दिर
चित्र फलक-10	तारा (धातु प्रतिमा)
चित्र फलक-11	बाराह अवतार : गन्धेश्वर मन्दिर
चित्र फलक-12	तोरण द्वार : लक्ष्मण मन्दिर
चित्र फलक-13	अम्बिका-सिरपुर-संग्रहालय
चित्र फलक-14	गरुड वाहन (विष्णु) गन्धेश्वर मन्दिर

मानचित्र सूची

- 1- प्राचीन मध्य प्रदेश
- 2- सिरपुर मानचित्र
- 3- छोटा किला (भवनो का प्लान)
- 4- प्राचीन नगर स्थल (भवनो का प्लान)
- 5- शिव मन्दिर 1 का प्लान
- 6- शिव मन्दिर 2 का प्लान
- 7- शिव मन्दिर 1-टीले के सेक्शन

ਚਿਤ੍ਰ-ਕਥਾ-ਨਾਵੀ

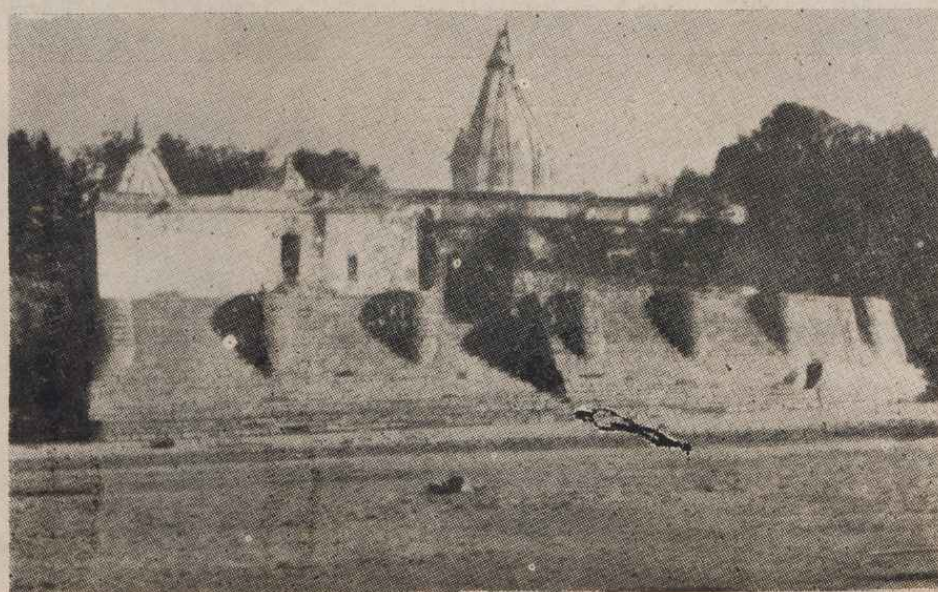
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	1 - ਪੰਨਾ 1
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	2 - ਪੰਨਾ 2
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	3 - ਪੰਨਾ 3
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	4 - ਪੰਨਾ 4
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	5 - ਪੰਨਾ 5
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	(6) 6 - ਪੰਨਾ 6
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	(7) 7 - ਪੰਨਾ 7
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	8 - ਪੰਨਾ 8
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	9 - ਪੰਨਾ 9
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	10 - ਪੰਨਾ 10
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	11 - ਪੰਨਾ 11
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	12 - ਪੰਨਾ 12
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	13 - ਪੰਨਾ 13
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ : ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	14 - ਪੰਨਾ 14

ਚਿਤ੍ਰ ਨਾਵੀਕਾ

ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	1
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	2
(ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ) ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	3
(ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ) ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	4
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ 1 ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	5
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ 2 ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	6
ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ 3 ਪ੍ਰਤੀਮ ਪਾਠਕ	7



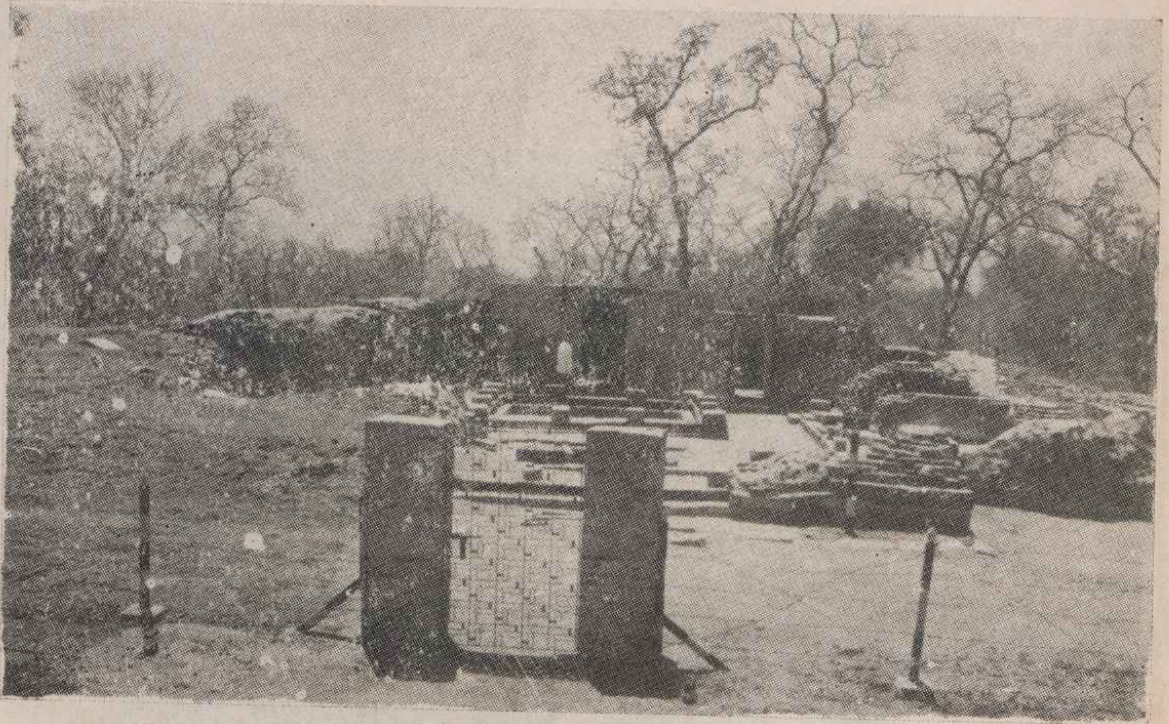
1. लक्ष्मण मन्दिर



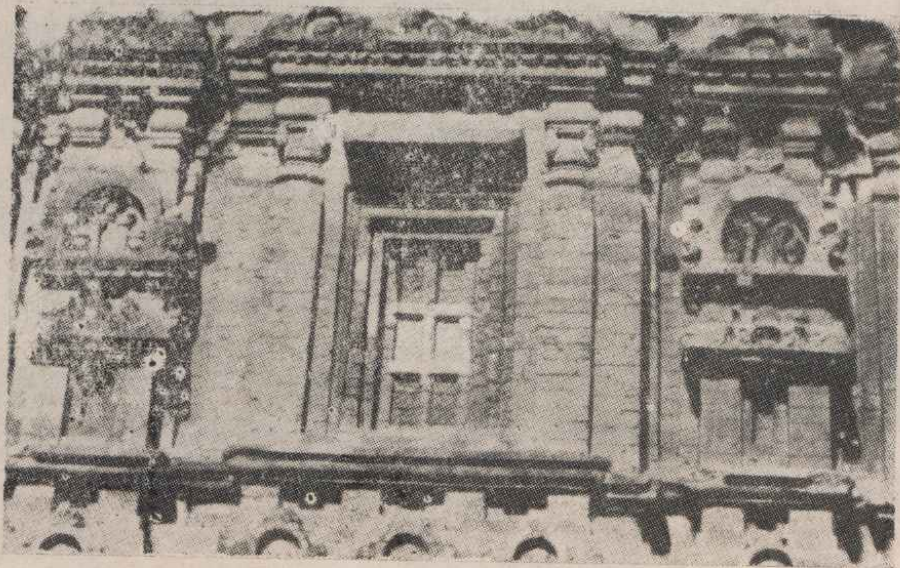
2. गणेश्वर मन्दिर



3. आनन्द प्रभु कुटी विहार



4. स्वास्तिक विहार



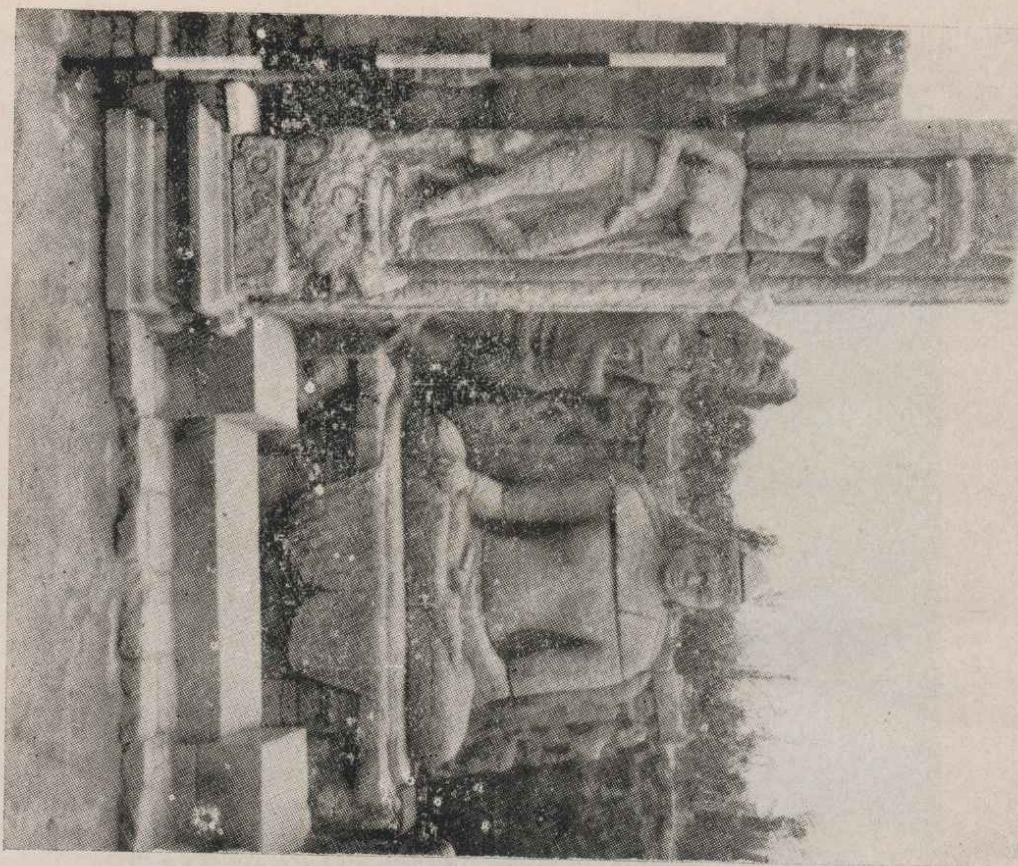
5. वातायन : लक्ष्मण मन्दिर



5 अ. शिव तांडव : गन्धेश्वर मन्दिर प्रांगण



5 ब. वेंकुण्ठ नारायण की प्रतिमा : लक्ष्मण मन्दिर



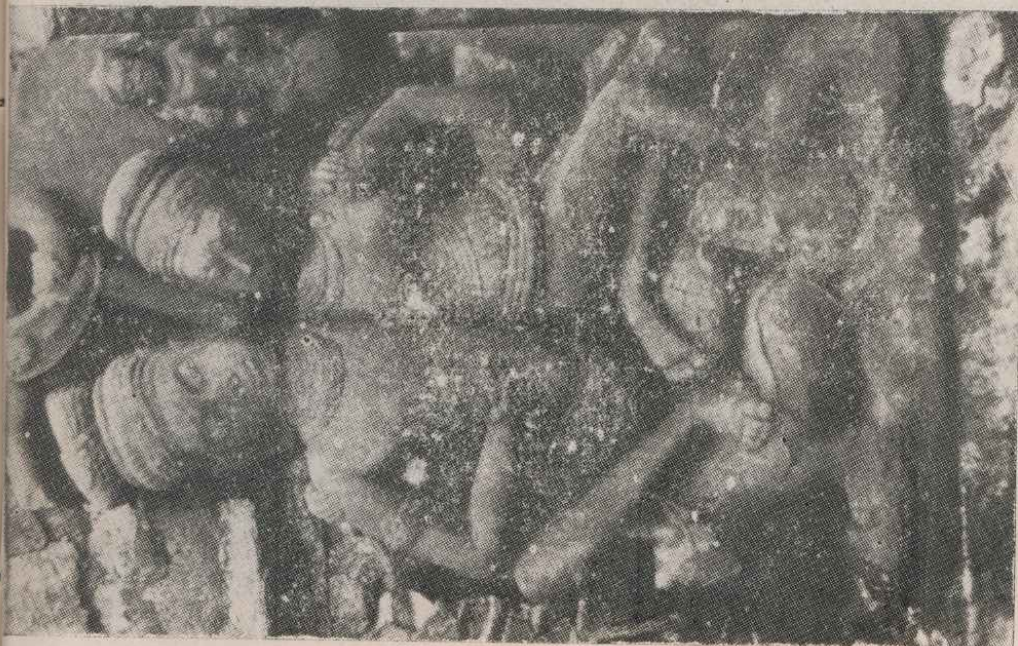
7. बुद्ध प्रतिमा : आनन्द प्रभु कुटी विहार



6. महिषासुर मर्दिनी



8. चतुर्मुख लिंग



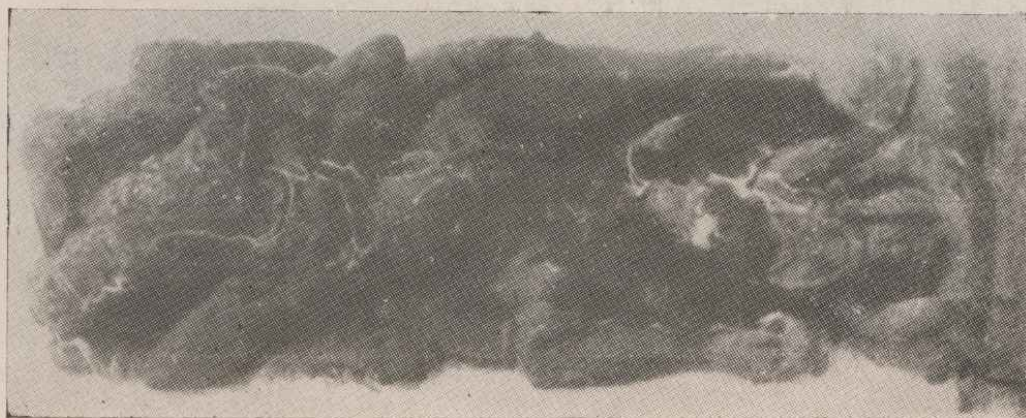
9. शिव पार्वती - गन्धेश्वर मन्दिर



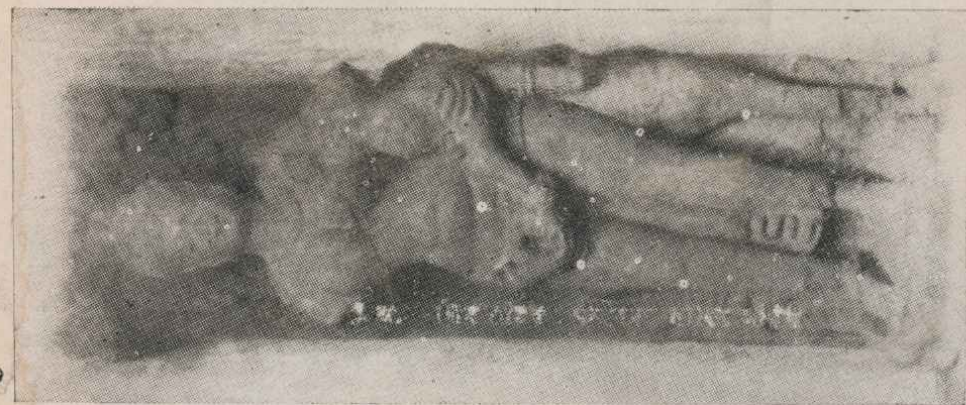
10. तारा - धातु-प्रतिमा



12. तोरण द्वार : लक्ष्मण मन्दिर



11. बाराह अवतार-गणेश्वर मन्दिर

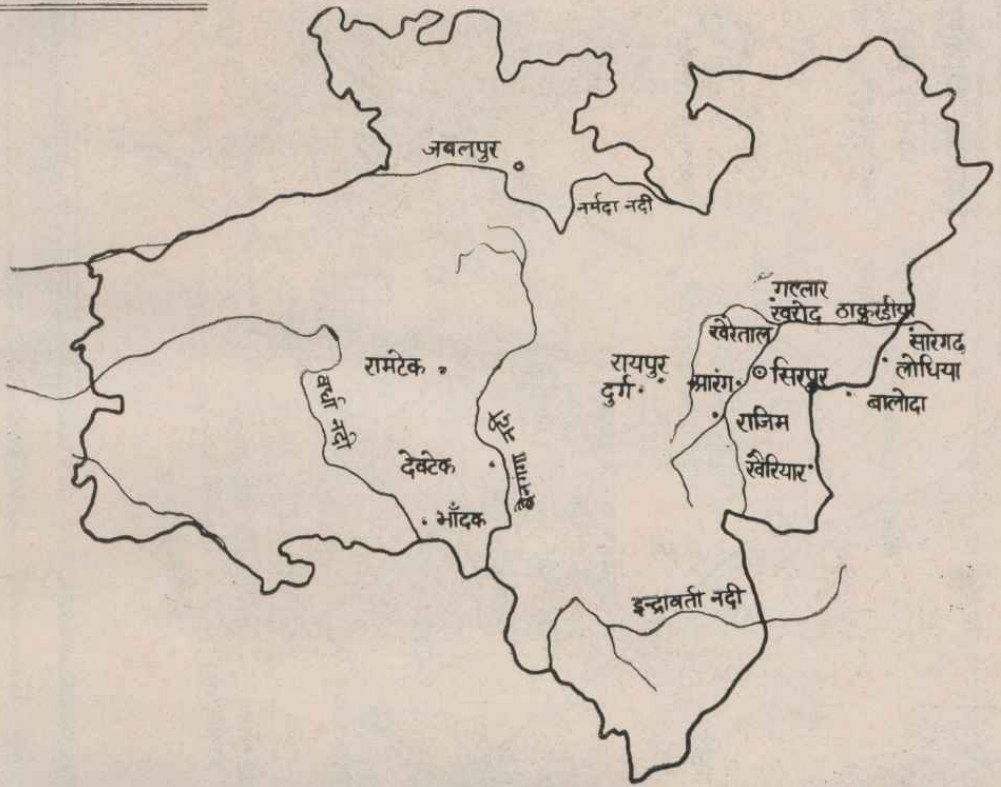


13. अम्बिका-सिरपुर संग्रहालय

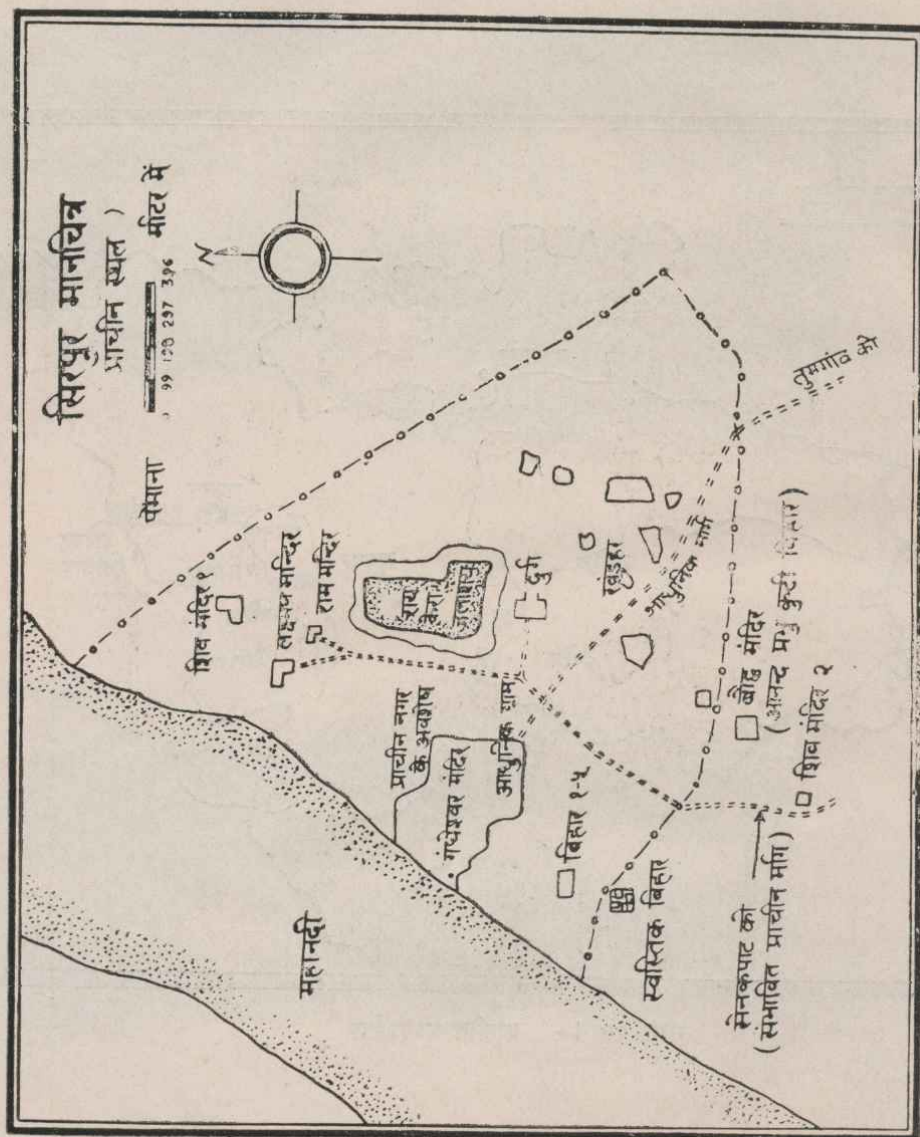


14. गरुड़ वाहन (विष्णु) गन्धेश्वर मन्दिर

प्राचीन मध्य प्रदेश

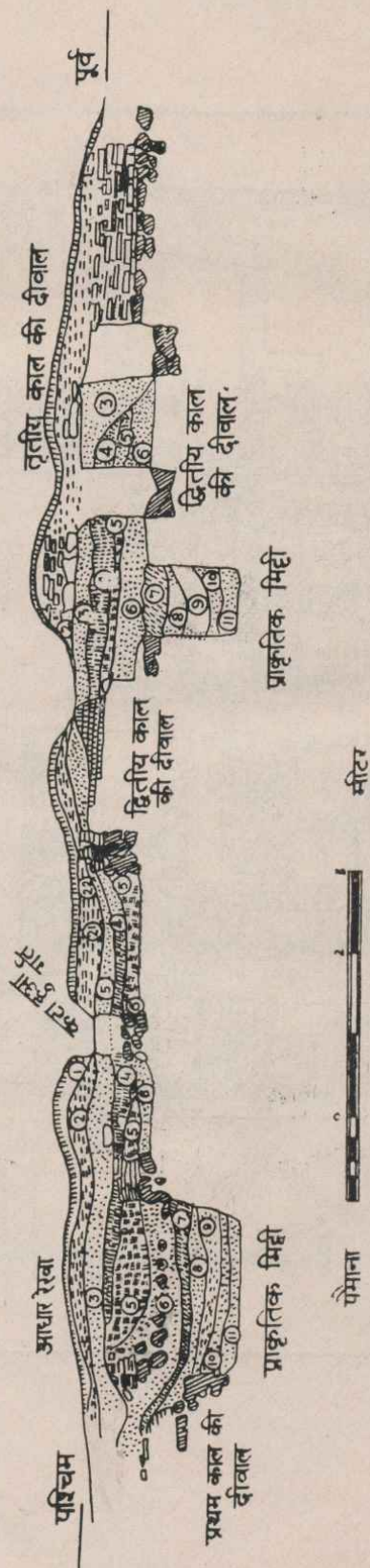


मानचित्र 1- प्राचीन मध्य प्रदेश

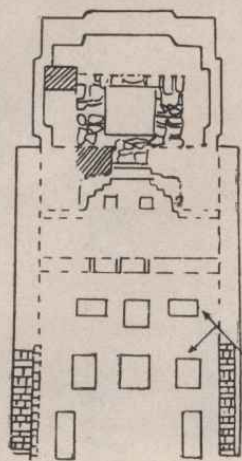


मानचित्र-२ : सिरपुर

सिरपुर - प्राचीन नगर - स्थल का सेक्शन



शिव मन्दिर १ का प्लान

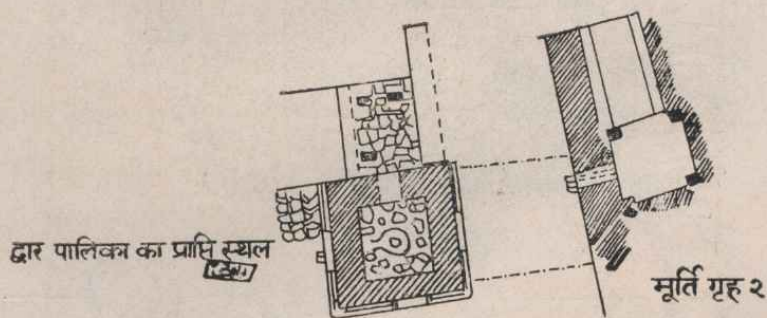


5 0 5 10 15 20 25 मीटर



कंठारियों की नींव

शिव मन्दिर १

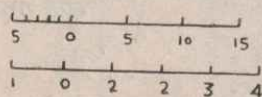
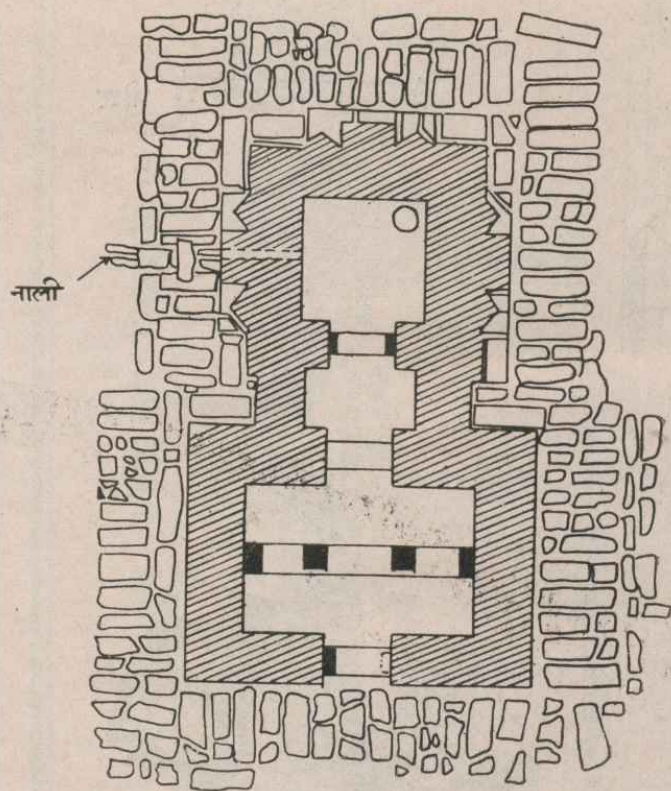


द्वार पालिकन का प्राप्ति स्थल

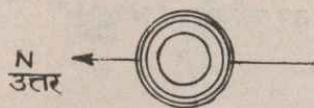
मूर्ति गृह २

मूर्ति गृह १

शिव मन्दिर २



फीट
मीटर



सिरपुर १८५४ शिव मन्दिर टीले का सेक्शन

पैमाना ० १ २ मीटर

पश्चिम

